जनवरी –2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष–87 | अंक–1 | ₹-25 प्रति | ₹-300 वार्षिक

5 स्वस्थ शरीर का अनुदान

15 महामृत्युंजय मंत्र महिमा

44 सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव

62 अनगिनत गतिविधियों का केंद्र बना विश्वविद्यालय

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

जनवरी —1948

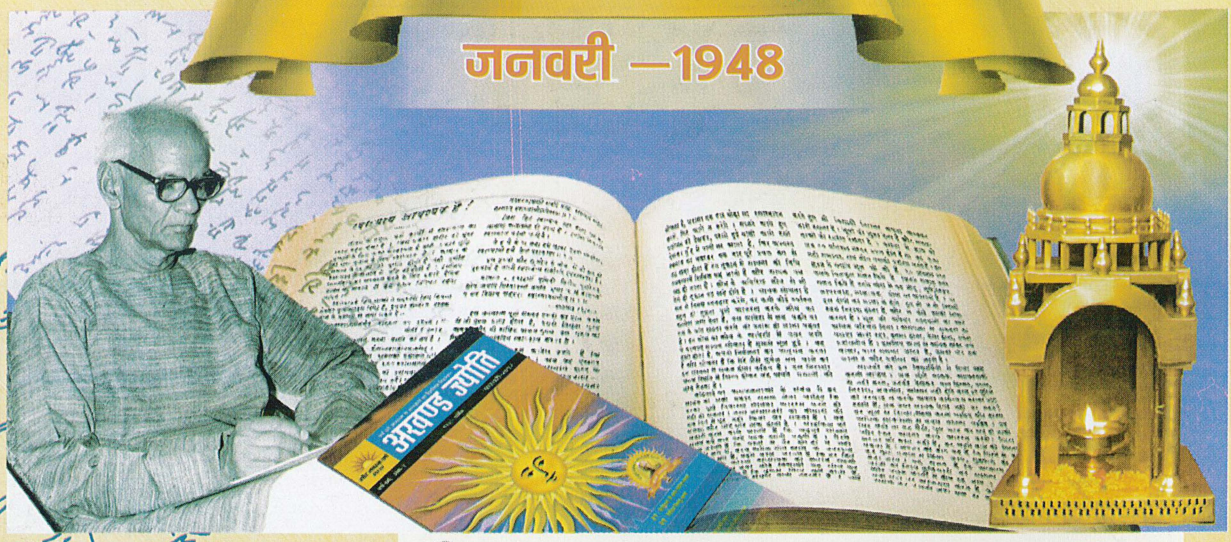

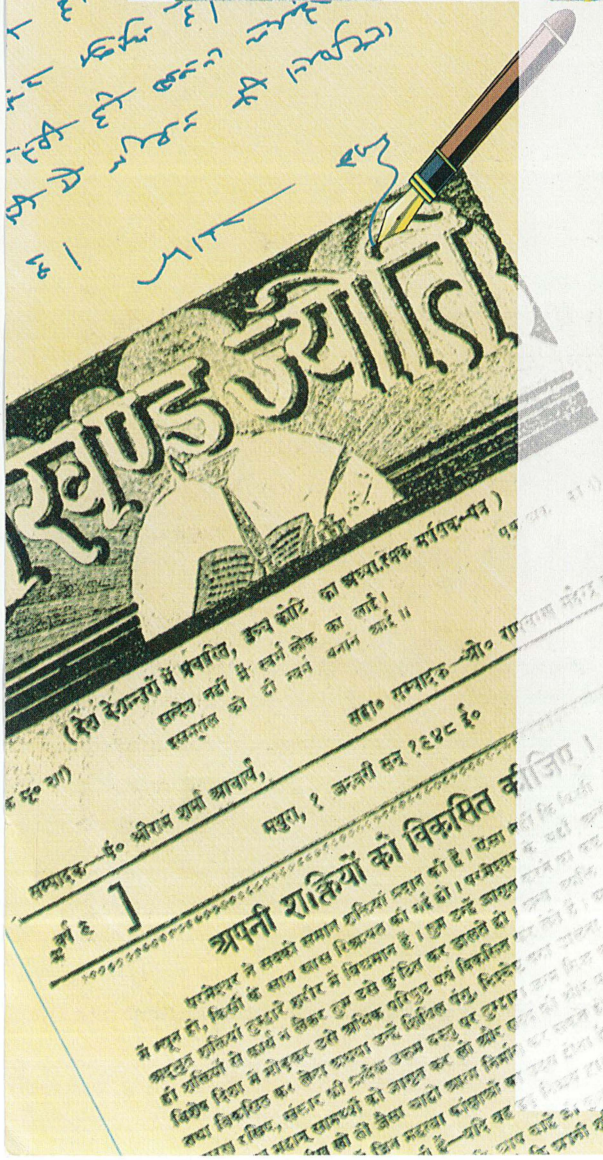

अपनी शक्तियों को विकसित कीजिए

परमेश्वर ने सबको समान शक्तियाँ प्रदान की हैं। ऐसा नहीं कि किसी में अधिक किसी में न्यून हों, किसी के साथ खास रिआयत की गई हो। परमेश्वर के यहाँ अन्याय नहीं। समस्त अद्भुत शक्तियाँ तुम्हारे शरीर में विद्यमान हैं। तुम उन्हें जाग्रत करने का कष्ट नहीं करते। कितनी ही शक्तियों से कार्य न लेकर तुम उसे कुंठित कर डालते हो। अन्य व्यक्ति उसी शक्ति को किसी विशेष दिशा में मोड़कर उसे अधिक परिपुष्ट एवं विकसित कर लेते हैं। अपनी शक्तियों को जाग्रत तथा विकसित कर लेना अथवा उन्हें शिथिल, पंगु, निश्चेष्ट बना डालना स्वयं तुम्हारे ही हाथ में है। स्मरण रखिए, संसार की प्रत्येक उत्तम वस्तु पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि तुम अपने मन की गुप्त महान सामर्थ्यों को जाग्रत कर लो और लक्ष्य की ओर प्रयत्न, उद्योग और उत्साहपूर्वक अग्रसर होना सीख लो तो जैसा चाहो आत्मनिर्माण कर सकते हो। मनुष्य जिस वस्तु की आकांक्षा करता है—उसके मन में जिन महत्त्वाकांक्षाओं का उदय होता है और जो-जो आशापूर्ण तरंगें उदित होती हैं, वे अवश्य पूर्ण हो सकती हैं—यदि वह दृढ़ निश्चय द्वारा अपनी प्रतिज्ञा को जाग्रत कर ले।

अतएव प्रतिज्ञा कर लीजिए कि आप चाहे जो कुछ हों, जिस स्थिति, जिस वातावरण में हों, आप एक कार्य अवश्य करेंगे—वह यही कि अपनी शक्तियों को ऊँची -से- ऊँची बनाएँगे।

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	:	87
अंक	:	01
जनवरी	:	2023
पौष-माघ	:	2079
प्रकाशन तिथि	:	01.12.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

बंधन

पराधीनता का अर्थ बंधन निकल करके आता है। चाहे वो पराधीनता भौगोलिक हो, सांसारिक हो अथवा आध्यात्मिक—पराधीनता का परिणाम दुःखद ही होता है। जीवात्मा की प्रकृति बंधन में बँधने की नहीं होती है। जेल की कोठरियों को चाहे स्वर्णमंडित कर दिया जाए, हथकड़ियाँ चाहे हीरे की हों, बंधन तो आखिर बंधन ही है। कुछ ऐसा ही अनुभव जीवात्मा को भी तब होता है, जब वह सांसारिक आकर्षणों की मोह-माया में गिरकर कर्मबंधनों का काराग्रह स्वयं के लिए निर्मित कर लेती है। इसीलिए भवबंधनों से मुक्ति को जीवात्मा के लिए परम पुरुषार्थ में गिना गया है।

बंधन एवं पराधीनता से बढ़कर दुःख नहीं एवं मुक्ति और मोक्ष से बढ़कर आनंद नहीं। सब कुछ मिल जाने पर भी यदि हम बँधे हुए हैं तो वो परतंत्रता दुःख एवं दैन्य का कारण बनती है। यदि भक्ति के एवं ईश्वर अनुराग के बंधन को इस सूची में से हटा दिया जाए तो अन्य ऐसा कोई बंधन नहीं, जिसमें पड़कर आत्मा को आनंद का अनुभव हो सके। इसीलिए आत्मा सदैव मुक्ति के लिए लालायित रहती है; क्योंकि दुःखों का कारण बंधन और सुखों का आधार स्वतंत्रता है।

बंधन चाहे सुख के हों अथवा दुःख के—बंधन तो बंधन ही हैं और इनसे मुक्ति ही मनुष्य जन्म का एकमात्र और सर्वोपरि लक्ष्य है। ❑

विषय सूची

- आवरण-1 — 1
- आवरण-2 — 2
- बंधन — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  स्वस्थ शरीर का अनुदान — 5
- आध्यात्मिक जीवन के आदर्श—भगवान शिव — 8
- ईश्वर कहाँ नहीं है ? — 11
- **पर्व विशेष—मकर संक्रांति**
  भारतीयता का उत्तरायण — 13
- महामृत्युंजय मंत्र महिमा — 15
- गायत्री के मंत्रद्रष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र — 18
- गंगा का अविरल निर्मल प्रवाह — 20
- अंतर्मुखी व्यक्तित्व — 25
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—4**
  इंद्रिय संयम — 27
- पुरुषार्थ चतुष्टय—भारतीय संस्कृति में
  जीवन के चार आधार — 28
- **चेतना की शिखर यात्रा—244**
  प्रज्ञावतार के लीला केंद्र — 31
- नववर्ष की मंगलकामना — 35
- विज्ञान से अध्यात्म की ओर — 39
- प्रकृति के संग स्वस्थ व निरोगी जीवन — 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—165**
  सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव — 44
- बुजुर्गों को सम्मान और प्यार दें — 47
- **युगगीता—272**
  अपनी रुचि के अनुसार लेते हैं व्यक्ति आहार — 50
- विश्व को भारतीय संस्कृति की देन — 53
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी—2**
  संत के अनुयायी हैं हम — 55
- **विश्वविद्यालय परिसर से—211**
  अनगिनत गतिविधियों का केंद्र बना
  विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  महामानवों के जागरण का समय — 67
- तरुण संकल्प (कविता) — 70
- आवरण—3 — 71
- आवरण—4 — 72

आवरण पृष्ठ परिचय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का फ्रंटव्यू

जनवरी-फरवरी, 2023 के पर्व-त्योहार

सोमवार	02 जनवरी	पुत्रदा एकादशी
मंगलवार	10 जनवरी	संकष्ट चतुर्थी
गुरुवार	12 जनवरी	राष्ट्रीय युवा दिवस
शनिवार	14 जनवरी	मकर संक्रांति
बुधवार	18 जनवरी	षट्तिला एकादशी
शनिवार	21 जनवरी	मौनी अमावस्या
सोमवार	23 जनवरी	नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती
गुरुवार	26 जनवरी	गणतंत्र दिवस/वसंत पंचमी
शुक्रवार	27 जनवरी	सूर्य षष्ठी
सोमवार	30 जनवरी	शहीद दिवस
बुधवार	01 फरवरी	जया एकादशी
रविवार	05 फरवरी	माघ पूर्णिमा/ संत रविदास जयंती
गुरुवार	16 फरवरी	विजया एकादशी 'स्मा.'
शनिवार	18 फरवरी	महाशिवरात्रि
सोमवार	20 फरवरी	सोमवती अमावस्या
मंगलवार	21 फरवरी	श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती
शनिवार	25 फरवरी	सूर्य षष्ठी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

स्वस्थ शरीर का अनुदान

वर्तमान परिस्थितियों में एक अनपेक्षित घटनाक्रम हमारी आँखों के सामने घट रहा है और वर्तमान समय की समस्याओं में उसे संभवतया एक महत्त्वपूर्ण चुनौती के रूप में देखा एवं अनुभव किया जा सकता है। यह चुनौती मानवता के सम्मुख एक विडंबना के रूप में उभरकर आई है, अत: इसका तत्काल व समुचित समाधान करना हमारा एक प्रमुख दायित्व बन गया है। यह समस्या मानवता के सामने इस रूप में उभरकर आई है कि आज इनसान की आवश्यकताओं में से एक स्वस्थ व पोषक आहार को हमारी सर्वप्रमुख आवश्यकताओं में से एक में गिना जा सकता है।

इस समस्या को समग्रता से समझने के लिए इतिहास पर एक दृष्टि दौड़ाना अनिवार्य होगा। आज से दो सौ वर्ष पूर्व भोजन की, आहार सामग्री की अनुपलब्धता थी या फिर उनको समान रूप से सभी को उपलब्ध करा पाना संभव नहीं था। अमीर एवं विकसित देशों में जिन भोज्य पदार्थों को प्राप्त किया जा सकता था वो अनेक गरीब राष्ट्रों में लगभग दुष्प्राप्य ही थे।

परिणामस्वरूप कुछ देशों में लोग जरूरत से ज्यादा भोजन सामग्री को लेकर के बैठे थे तो कुछ देशों में लोग भुखमरी एवं कुपोषण के शिकार थे। जहाँ एक ओर इथियोपिया में अकाल के समाचार पढ़ने को मिलते थे तो वहीं अनेक देशों में लोग भोजन को फेंकते व बरबाद करते दिखाई पड़ते थे।

जब से आहार की उपलब्धता लगभग समान-सी हुई है तबसे समस्याओं का स्वरूप बदल गया है। आज लगभग विश्व के प्रत्येक देश में मोटापे एवं असंतुलित आहार के कारण जन्म लेने वाली विकृतियाँ चरम पर हैं। लगभग प्रत्येक देश में औसत वजन पिछले 50 वर्षों में बढ़ा ही है।

इसका एक कारण तो ये ही है कि आज लोग पहले की तुलना में खा ज्यादा रहे हैं। फ्रोजन फूड, जंक फूड, तुरंत प्राप्त हो जाने वाला भोजन, सस्ता भोजन—ये आज छोटे-से-छोटे कस्बों में विभिन्न तरह के सुपरमार्केट मॉल के माध्यम से उपलब्ध हो जाते हैं। परिणाम यह है कि उच्च कैलोरी वाले भोज्य पदार्थों को एक सामान्य परिवार भी प्रचुरता में ग्रहण कर रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के विगत वर्ष के आँकड़ों के अनुसार पिछले 50 वर्षों में प्रत्येक व्यक्ति की दैनंदिन कैलोरी ग्रहण क्षमता 500 कैलोरी से ज्यादा बढ़ गई है। परिणाम स्पष्ट है कि मोटापा, बढ़ते वजन, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से एक बड़ा वर्ग जूझता नजर आता है।

इसके साथ ही एक समस्या यह भी है कि लोग असंतुलित, असंयमित, अभक्ष्य भोजन प्रमुखता से करते दिखाई पड़ते हैं। घर में बने भोजन की जगह रेस्टोरेंट और टेक-अवे जैसे माध्यमों को प्राथमिकता देने का भी यह परिणाम है कि अनेकों की कमर का अनुपात जरूरत से ज्यादा बढ़ता नजर आता है।

फिर जीवनशैली में आए बदलावों को भला कौन नजरअंदाज कर सकता है? आज श्रमशीलता बुरी तरह से घटी है, लोग थोड़ी दूरी के लिए भी चलने के स्थान पर गाड़ियों का सहारा लेते हैं, जीवनशैली में व दिनचर्या में ठहराव-सा आ गया

है, कंप्यूटर स्क्रीन पर या ऑफिस की टेबल पर लोगों की जिंदगी का एक-तिहाई हिस्सा गुजर जाता है और ये सभी एक-एक करके अपनी दृष्टि से वजन को बढ़ाने में अपनी भूमिका को निभाते नजर आते हैं।

कारण जो भी हों, पर इस बदलाव के परिणाम भयावह हैं। मोटापा न केवल हृदय रोगों को, उच्च रक्तचाप को, उच्च कोलेस्ट्रॉल को, मधुमेह को जन्म देता है, बल्कि यह अनेक कैंसरों को जन्म लेने के पीछे का मुख्य कारण भी है। इस पर रोक-थाम लगाने का एक प्रमुख माध्यम शारीरिक व्यायाम एवं गतिविधियाँ हैं।

यहाँ पर ध्यान देने योग्य तथ्य है कि मोटापा हो जाने के बाद नियमित व्यायाम वजन को बढ़ने से तो रोकते हैं, पर उसे घटाने में बड़ी भूमिका अदा नहीं कर पाते। ऐसा इसलिए; क्योंकि शारीरिक व्यायाम करने से व्यक्ति को भूख लगती है और जो कैलोरी व्यायाम के माध्यम से गँवाई गई थी, लगभग उतनी ही व्यक्ति दोबारा ग्रहण कर लेता है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति में यौगिक पद्धतियाँ कई गुना ज्यादा प्रभावी सिद्ध हुई हैं; क्योंकि इनका उद्देश्य बहुत तेजी से कैलोरी गँवाना और फिर उतनी ही तेजी से उनको अर्जित करना नहीं है। ज्यादातर यौगिक प्रक्रियाएँ जिनमें प्रज्ञायोग व्यायाम की विशेष भूमिका है—हमारे वजन को एक वैज्ञानिक तरीके से घटाने का कार्य करती हैं, जिससे व्यक्ति धीरे-धीरे सही पर अपने शरीर को स्वस्थ बना पाता है। जो लोग इस समस्या से ग्रस्त हों, उन्हें सबसे पहले प्रज्ञायोग की आसन परंपरा को दैनिक दिनचर्या का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता है।

दूसरा तरीका जो बढ़ते वजन पर नियंत्रण लाने में कारगर हो सकता है—वह आहार पर नियंत्रण का है। आज पश्चिमी जगत् से लेकर छोटे-छोटे गाँवों में लोग डायटिंग करते दिखाई पड़ते हैं, परंतु यहाँ भी समस्या वही है कि ऐसा करने पर भी परिणाम सफलता दिलाते नहीं दिखाई पड़ते हैं।

उदाहरण के तौर पर, विगत दिनों की गई DIETFITS शोध के परिणामों को देखें तो पता चलता है कि वसामुक्त या कार्बोहाइड्रेटमुक्त भोजन भी व्यक्ति के वजन में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं लाते हैं।

यहाँ भी भारतीय परंपरा के अनुसार लंबे समय से चली आ रही व्रत-उपवास की परंपरा ज्यादा प्रभावी है। रविवार या बृहस्पतिवार का उपवास करने से न केवल व्यक्ति आध्यात्मिक ऊर्जा को प्राप्त करता है, बल्कि वह एक स्थिर अनुपात में वजन को घटाता भी है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों किए गए चांद्रायण व्रत-साधना के प्रयोग भी इस दिशा में मिली चमत्कारिक सफलताओं की ओर इशारा करते हैं। जो लोग आहार नियंत्रण के माध्यम से वजन पर काबू पाना चाहें—उनके लिए व्रत, उपवास, कल्प-साधना के प्रयोग दोनों दृष्टि से अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। इन साधनाओं को अपनाते समय फास्ट फूड, जंक फूड को वैसे ही त्यागना होता है तो सात्त्विक, संतुलित, संस्कारित भोजन के सुपरिणाम भी व्यक्ति को प्राप्त हो पाते हैं।

इन प्रमुख कारणों के अलावा कुछ लोग वजन की समस्या से इसलिए भी प्रभावित होते हैं; क्योंकि उनके लिए यह आनुवांशिक कारण होता है। पिछले दिनों हुई शोधों में यह स्पष्ट हुआ कि जिन लोगों में CREBF नामक जीन होता है, उनमें से 30-40% मोटापे के लिए जिम्मेदार होता है।

चूँकि इस कारण को पता लगाना कठिन है, पर प्रयोगशाला में इसका परीक्षण भी नहीं किया जा सकता, अत: आवश्यक है कि स्वस्थ शरीर को बनाए रखने की पद्धतियों को किसी-न-किसी रूप में हर व्यक्ति अपनाए, ताकि यदि यह कारण भी उनके भीतर है तो इसको प्रभावी बनाने से रोका जा सके।

वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि ऐसा कर पाना संभव है। वार्डल द्वारा 2400 के करीब जुड़वाँ बच्चों पर किए गए शोधों का परिणाम बताता है कि ऐसा किया जा सकता है। जुड़वाँ बच्चों की आनुवांशिक संरचना एक जैसी होती है और उनके घर का वातावरण भी।

तब भी पाया गया कि जिन बच्चों ने स्वस्थ आहार की परंपरा को अपनाया—उनके वजन में 2 किलोग्राम से ज्यादा की घटोतरी देखने को मिली। ऐसे में माता-पिता की भी यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वे बच्चों को स्वादिष्ट भोजन की अपेक्षा पौष्टिक एवं सात्त्विक भोजन देने में पर्याप्त भरोसा रखें।

वर्तमान समय में विकृत जीवनशैली एवं असंतुलित आहार के कारण मोटापा एक महामारी के रूप में उभरकर आया है। इस हेतु उपरोक्त वर्णित प्रयासों में से किसी एक को अपनी जीवनशैली का हिस्सा बना लेना हमारी जिम्मेदारी हों जाती है। जो इन स्वस्थ परंपराओं को अपनाते हैं, वो स्वस्थ शरीर का अनुदान भी प्राप्त कर पाते हैं। इस नववर्ष का प्रारंभ इन्हीं परंपराओं को अपनाकर किया जा सकता है। ❑

असुरों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया। ब्रह्मा जी देवताओं से बोले—"तुमने असंयम के कारण अपनी सामर्थ्य गँवा दी है। महाराज मुचकुंद मनुष्य होने के बाद भी सेनापति पद के उपयुक्त हैं; क्योंकि उन्होंने संयम व पराक्रम में देवों को भी पीछे छोड़ दिया है।" महाराज मुचकुंद की अगुआई में युद्ध आरंभ हुआ। मुचकुंद का पुण्य बहुत था, असुर उनके समक्ष धराशायी होते चले। चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी। यह सुनकर मुचकुंद का अहंकार जाग्रत हो गया। उनके मन में अहं को पनपते देख ब्रह्मा जी को चिंता हुई और उन्होंने इंद्रदेव को बुलाकर कार्तिकेय को सेनापति पद प्रदान करने को कहा।

ब्रह्मा जी की चिंता सही निकली; क्योंकि अहंकार बढ़ते ही मुचकुंद की जीवनशैली बदल गई। वे चाटुकारों से घिर गए एवं अपनी शक्ति व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करने लगे। कार्तिकेय के सैन्य संचालन में देवता विजयी बने, परंतु मुचकुंद अपनी शक्ति खोकर धरती पर जा गिरे, तब जाकर उन्हें अपनी भूल का भान हुआ। निराश-हताश वे ब्रह्मा जी के पास पहुँचे तो ब्रह्मा जी बोले—"वत्स! तुम्हारी साधना अधूरी रह गई थी, यह उसी का परिणाम है। अब फिर से तपस्या आरंभ करो, संयमित जीवन व्यतीत करो, पर शक्ति प्राप्त होने पर अहंकार को स्थान न देना।"

आध्यात्मिक जीवन के आदर्श-भगवान शिव

आध्यात्मिक जीवन में आदर्श का चयन एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अपनी रुचि-स्वभाव एवं प्रकृति के अनुरूप इसका निर्धारण किया जाता है। सनातन धर्म में जीवन में पूर्णता को प्राप्त आध्यात्मिक आदर्शों की लंबी श्रृंखला है, जिनमें से यह चयन किया जा सकता है। इनमें भगवान शिव स्वयं में अप्रतिम हैं, अद्वितीय हैं, आध्यात्मिक पूर्णता के मूर्तिमान प्रतीक हैं। आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर हो रहे मुमुक्षु साधक एवं सद्गृहस्थ के लिए वे सहज ही प्रेरणा के पुंज हैं।

भगवान शिव को योग का जनक माना जाता है। वे आदियोगी हैं, आदिगुरु हैं। जिनका कोई गुरु न हो, वे भगवान शिव को अपना गुरु मान सकते हैं, यह शास्त्रसंगत मत है। प्राय: भगवान शिव का स्वरूप किन्हीं पर्वत शिखर या एकांत स्थल पर ध्यानमग्न दिखाया जाता है। इनके शरीर पर सुशोभित तमाम विचित्र श्रृंगार भक्तों व साधकों का ध्यान आकर्षित करते हैं, जो गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य लिए हुए हैं।

भगवान शिव के माथे पर चंद्रमा विराजमान रहते हैं, जो शीतलता का प्रतीक हैं। हमें भी जीवन की विषमताओं-अनुकूलताओं, उतार-चढ़ाव, शुभ-अशुभ के बीच शांत व शीतल रहना चाहिए तथा प्रमुदित रहने का अभ्यास करना चाहिए। शिव गंगा जी को अपनी जटाओं में धारण किए रहते हैं। राजा भगीरथ के तप पर जब गंगा जी धरती पर अवतरित हुईं, तो उनके तीव्र वेग को भगवान शिव ने जटाओं में धारण किया था, यह शिव की समर्थता एवं लोकहित में उदार सहयोग का प्रतीक है।

इस तरह भगवान शिव पात्रता के विकास व लोकहित में उदार सहयोग की प्रेरणा देते हैं। इसके साथ भगवान शिव का कैलास पर्वत या हिमालय के शिखरों में वास उनके तप:प्रधान एकांतिक जीवन को दरसाता है। भगवान शिव के आराधक को भी सांसारिक जीवन के जटिल प्रवाह के बीच ऐसे आत्मिक प्रगति के लिए आवश्यक संयोगों की व्यवस्था करनी चाहिए।

भगवान शिव की देह पर भस्म का लेप रहता है, जो जीवन के नश्वर स्वरूप का बोध कराता है। एक दिन इस काया का अंत भस्म की ढेरी के रूप में होना है। अत: इसका ध्यान रखते हुए आत्मतत्त्व का सदा चिंतन-मनन करते रहें, अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए सदैव अनासक्त व निर्लिप्त भाव से संसार में विचरण करें।

भगवान शिव श्मशान घाट पर वास करते हैं। इसका संदेश यही है कि मृत्यु का सदैव ध्यान रखा जाए तथा जीवन के नश्वर स्वरूप के बीच इसके शाश्वत प्रवाह में मन को निमग्न रखा जाए तो व्यक्ति बुरे कर्मों से बचा रहेगा और एक दिन जब मृत्यु आएगी तो वह उसके लिए तैयार होगा तथा देह का त्याग जीवन की महायात्रा का एक पड़ाव भर होगा और मृत्यु दु:ख व शोक के बजाय उत्सव का रूप लिए होगी।

भोलेनाथ नीलकंठ भी कहलाते हैं, जो कंठ में समुद्रमंथन से निकले कालकूट विष को धारण करने के कारण हैं। यह लोकहित में महान तप-त्याग एवं आत्मबलिदान के दुस्साहस का प्रतीक है, साथ

ही इसमें वाणी के असाधारण संयम का संदेश भी देता है।

हम दूसरों के विषम व प्रतिकूल व्यवहार के बावजूद उदारता-सहिष्णुता का परिचय दें व वाणी में मधुरता, शालीनता एवं धैर्यता को धारण किए रहें। यह भगवान नीलकंठ की सच्ची आराधना होगी। संसार की कटुता व क्लेश के बीच भी शिवभक्त, संसार के कल्याण करने की आत्मिक वृत्ति का त्याग नहीं करता और स्वयं विष का पान करते हुए भी दूसरों को सदा अमृत तत्त्व बाँटता रहता है।

भगवान शिव तृतीय नेत्रधारी दिखाए जाते हैं, जिसमें काम को भस्म करने की क्षमता है। तृतीय नेत्र दूरदर्शिता, विवेक-बुद्धि का प्रतीक है; जो उचित-अनुचित का भेद करता है, वर्तमान के तात्कालिक लाभ के बजाय दूरगामी परिणामों को देखते हुए कष्ट, अभाव सहते हुए भी समझदारी भरे निर्णय लेता है।

तृतीय नेत्र जाग्रत आज्ञाचक्र का भी नाम है। यह स्वयं पर स्वामित्व का भी प्रतीक है। जितना हम संयम—(इंद्रिय, समय, विचार एवं अर्थ संयम) का अभ्यास करेंगे, उतना ही हमारा स्वयं पर स्वामित्व स्थापित होता जाएगा, हम आत्मिक संपदा के अधिकारी बनेंगे, जिसकी पूर्णता शिवस्वरूप महायोगी की अवस्था होती है, जो हमारे आध्यात्मिक आदर्श हैं।

भगवान शिव के गले व काय पर सर्प लिपटे दिखाए जाते हैं। सर्प अहंकार व क्रोध का प्रतीक है, जो तनिक-से प्रहार पर भी फुफकार उठता है। ऐसा भयंकर जीव भी भगवान शिव के गले का शृंगार बनता है और शांत भाव से उनसे लिपटा रहता है, उनकी रक्षा करता है।

भगवान शिव के गले में सर्प होने का आध्यात्मिक संदेश यही है कि क्रोधी व अहंकारी व्यक्ति को भी अपने संयम व प्रेम के बल पर साधने का प्रयास करे तथा किन्हीं महान प्रयोजन के निमित्त उसका नियोजन करे।

भगवान शिव बाघंबर के आसन पर बैठे दिखाए जाते हैं। बाघ क्रूर एवं हिंसक पशुता का प्रतीक है, जिसे आसन बनाकर भगवान शिव ध्यान- साधना में निमग्न रहते हैं। ऐसे ही जीवन में अंतर्निहित प्रबल पशुता को हावी नहीं होने देना चाहिए व उस पर आसन जमाकर साधनामय जीवन जीना, भगवान शिव की इस भंगिमा की प्रेरणा है।

भगवान शिव के हाथ में त्रिशूल व डमरू रहते हैं। डमरू संगीत व नृत्य के उल्लास का प्रतीक है तो उसी तरह हम भी अपने सत्कर्मों व सच्चिंतन के साथ जीवन को संगीतमय बनाते चलें तथा इस प्रमुदित अवस्था में अपना उल्लास संतापग्रस्त जगत् में बाँटते रहें। त्रिशूल भगवान शिव की संहारक शक्ति का प्रतीक है, जिसने त्रिपुरासुर दैत्य का वध किया था।

जीवन में कामैषणा, लोभैषणा व लोकैषणा ही प्रत्यक्ष त्रिपुरासुर हैं, जो व्यक्ति के जीवन पर अधिकार जमाकर इसे नरकतुल्य बनाए रहती हैं। हम भी भगवान शिव के भक्त होने के नाते अपने त्रिशूल को धार देते रहें व वासना, तृष्णा तथा अहंतारूपी पाप के इन तीनों किलों को ध्वस्त करते हुए आध्यात्मिक जीवन के आदर्श को धारण करें।

भगवान शिव के वाहन नंदी सौम्यता व कर्मठता के प्रतीक हैं। गोमाता से उत्पन्न नंदी सात्त्विकता व सौम्यता के प्रतीक हैं, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर वे शौर्य व पराक्रम में भी किसी से कम नहीं। भगवान शिव को अपना आराध्य मानने वाले नंदीश्वर की इन विशेषताओं को अपने जीवन में धारण करें तो यह सर्वथा प्रशंसनीय माना जाएगा।

भगवान शिव सद्गृहस्थ हैं, उनका पूरा परिवार है, जिसमें माता पार्वती के साथ पुत्र कार्तिकेय व गणेश हैं तो साथ में नंदी व अन्य गण। इस रूप में वे एक सद्गृहस्थ एवं योगी का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो संसार में रहते हुए भी आध्यात्मिक जीवन के मूर्तिमान आदर्श हैं। एक संन्यासी की तरह एक गृहस्थ के लिए भी भगवान शिव आध्यात्मिक आदर्श हैं। यही उनकी विरल विशेषता है, जिसके कारण वे देवों के देव महादेव कहलाते हैं।

भगवान शिव का प्रचलित रूप शिवलिंग है जो उनके देहभाव से परे आत्मिक स्वरूप को प्रदर्शित करता है। यह इस तथ्य का भी प्रखर बोध कराता है कि संसार का स्वरूप साकार होते हुए भी इसका आधार आत्मा है। इस रूप में आध्यात्मिक दृष्टि से संसार के भौतिक सौंदर्य का अधिक महत्त्व नहीं। साधक को सांसारिक सौंदर्य के मूल में निहित चैतन्य ईश्वरीय प्रवाह की उपासना करनी चाहिए— उसी को साधना चाहिए, यही शिवलिंग में निहित संदेश है।

सांसारिक रूप—सौंदर्य में खोकर आत्मविस्मृति एवं शिवतत्त्व से विमुख होना मानवीय जीवन की एक बड़ी विडंबना कही जाएगी। शिवलिंग के रूप में भगवान शिव की उपासना इसी शाश्वत सत्य की परिचायक है। इस तरह से भगवान शिव एक अलौकिक, आध्यात्मिक आदर्श हैं। ❑

पश्चिम जर्मनी के एक नगर में जाइगर नामक युवक नौकरी की तलाश में था। उसे एक मोटर कंपनी में सफाई का काम मिला। वह उसे इतनी मुस्तैदी के साथ करता था कि मालिक उसे पसंद करने लगा। उसके प्रति मालिक का भरोसा देख बाकी कर्मचारियों ने ईर्ष्या के कारण उसे झूठे आरोप में फँसा दिया। उसे जेल की सजा काटनी पड़ी, जहाँ उसका एक गिरोह तैयार हो गया। यह गिरोह जेल से बाहर निकलने के बाद डकैती डालने लगा और जाइगर दोबारा पकड़ा गया।

इस बार जब वह जेल में सजा पा रहा था तो उसे आत्मग्लानि होने लगी। घोर पश्चात्ताप के क्षणों में उसने साबुन के रैपर पर अपनी व्यथा एक कविता के रूप में लिखी, जो जेल के पादरी के हाथ लग गई। पादरी को लगा कि इस व्यक्ति का विकास किया जा सकना संभव है और उसने जेल के अधिकारियों से आग्रह करके उसके लिए लिखने के साधन जुटा दिए।

जाइगर ने वहाँ रहते हुए एक उपन्यास लिखना आरंभ किया और उसे जेल से बाहर आने पर मजदूरी करते हुए पूरा किया। वह उपन्यास 'दि फोर्ट्रेस' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस कृति ने उसे पूरे जर्मनी में प्रसिद्ध कर दिया। एक सजायाफ्ता अपराधी से एक प्रसिद्ध लेखक बनना मनुष्य की असीम संभावनाओं की कहानी है। हममें से प्रत्येक में ये संभावनाएँ निहित हैं, मात्र उन्हें प्रयास करके साकार करने की आवश्यकता है।

ईश्वर कहाँ नहीं है?

जनमानस को ज्ञान का अमृत पिलाते हुए गुरु नानकदेव भारत के कोने-कोने की यात्रा कर चुके थे। कुछ दिन करतारपुर में विश्राम करने के पश्चात उनके हृदय में भगवद्भक्ति का प्रचार करने की एक नई लहर उठी। उनकी आत्मा ने उन्हें आवाज दी—'उठो नानक! अभी तुम्हारा कार्य पूरा नहीं हुआ है। अभी कुछ और लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

अपनी अंतरात्मा की आवाज पर गुरु नानकदेव अरब देशों की यात्रा पर चल पड़े। उन दिनों हाजी लोग सूरत के बंदरगाह से ही मक्का-मदीना की यात्रा के लिए जाया करते थे। गुरु नानकदेव भी सूरत पहुँचे। वहाँ से पानी वाले जहाज पर चढ़कर वे अरब देशों की ओर चल पड़े। भाई मरदाना भी उनके साथ थे।

सागरतट से मक्का तक पैदल चलते-चलते गुरुजी मरुस्थल की यात्रा में काफी थक चुके थे। मरदाने को उन्होंने कहा कि 'अब तुम सो जाओ।' वहाँ हज यात्रा करने आए सारे हाजी गुरु नानकदेव के आस-पास ही लेटे हुए थे। रात में गुरु नानकदेव जब ठंढी-ठंढी रेत पर सो रहे थे तो उनके पाँव मक्का की ओर थे, जिसे 'काबा' कहा जाता था। मक्का की ओर, काबा की ओर पैर पसारकर सोना मुसलिम आस्था की दृष्टि में बहुत बड़ा अपराध माना जाता था; क्योंकि मक्का शरीफ खुदा का घर है। अस्तु मुसलमान हाजियों ने जब एक फकीर को (गुरु नानकदेव को) मक्के की ओर पाँव किए लेटे देखा तो वे क्रोधित हो उठे।

वे सभी गुरु नानकदेव के पास आए, पर गुरु नानकदेव तो आराम की नींद सो रहे थे। उन्हें क्या पता कि लोग उनके बारे में क्या सोच रहे हैं। हाजी लोग क्रोध से भरे उनके पास खड़े थे। उनके वश में होता तो वे उन्हें जान से मार डालते, पर गुरु नानकदेव संसार में रहते हुए भी इस संसार के मानव कहाँ थे।

वे तो महामानव थे। वे तो महापुरुष थे। वे तो महान आत्मा थे। वे तो एक उच्च कोटि के ईश्वरभक्त थे। उनके चेहरे से आत्मप्रकाश छलक रहा था। उनके पास खड़े हाजियों में क्रोध से भरा हुआ एक हाजी गुरु नानकदेव के पास आया और गुस्से में बोला—"तू कौन है, जो खुदा के घर की ओर पाँव करके लेटा हुआ है। चल उठ यहाँ से।"

विश्राम की स्थिति में गुरु नानकदेव ने अपनी प्रकाशभरी नजरें खोलीं, धीरे से मुस्कराए और बोले—"क्या बात है भाई?" अरे! तुम्हें नजर नहीं आता कि तुम खुदा के घर की ओर पाँव करके लेटे हुए हो?

गुरु नानकदेव ने कहा—"भाई! गुस्सा क्यों होते हो? मैं तो एक फकीर हूँ। मुझे तो पता नहीं खुदा का घर किस ओर है। फिर मैं बहुत थका हुआ हूँ। तुम यदि चाहते हो कि मैं खुदा की ओर पाँव न करूँ तो तुम्हीं उठाकर दूसरी ओर कर दो, जिस ओर खुदा का घर नहीं है।"

वह हाजी तो क्रोध से भरा हुआ था ही, उसने बड़े क्रोध और नफरत से गुरुजी के पाँवों को उठाकर दूसरी ओर कर दिया, पर यह क्या? वह हाजी जिस ओर गुरुजी के पाँव घुमाता, मक्का भी उसी ओर घूम जाता। हाजी ने समझा—शायद यह मेरी भूल है। शायद मैंने पाँव घुमाए नहीं होंगे,

इसलिए अभी भी पैर मक्का की ओर ही हैं। उसने एक बार फिर पाँव घुमा दिए। मगर खुदा का घर फिर उसी ओर घूम गया। वहाँ खड़े सभी हाजी यह देखकर दंग रह गए।

वे चुपचाप खड़े थे। यह चमत्कार देखकर हाजियों ने सोचा भला यह कैसा व्यक्ति है, जिसने खुदा के घर को हिला दिया। यह जरूर कोई पहुँचा हुआ फकीर है। वहाँ खड़े सभी हाजी गुरु नानकदेव के चरणों में गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे। यह बात वहाँ चारों ओर फैल गई।

दूर देश से आए हाजी, काजी, मौलवी आदि गुरु नानकदेव के पास आने लगे। वे सभी गुरु नानकदेव से वार्त्तालाप करने को उनके पास बैठ गए, पर वार्त्तालाप के बहाने वे सभी वास्तव में गुरु नानकदेव की परीक्षा लेना चाहते थे। अंतर्यामी गुरु नानकदेव उनके मनोभाव को समझ चुके थे।

वहाँ उपस्थित लोगों में एक काजी ने प्रश्न किया—"आप हिंदू हैं या मुसलमान?" "मैं न हिंदू हूँ और न मुसलमान। मैं तो ईश्वर का पैदा किया हुआ एक प्राणी हूँ। मैं उस ईश्वर का सच्चा सेवक भर हूँ।"—गुरु नानकदेव ने उत्तर दिया। काजियों ने फिर प्रश्न किया—"यदि आप कुछ नहीं हो तो बताओ हिंदू-मुसलमान में से अच्छा कौन है?" "दोनों एक ही ईश्वर के द्वारा पैदा हुए प्राणी हैं।"

उन्होंने आगे कहा—"ईश्वर तो प्रेम का सागर है। जहाँ प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जहाँ नफरत है वहाँ शैतान है। प्रश्न यह नहीं है कि ईश्वर कहाँ है? प्रश्न यह है कि वह कहाँ नहीं है? वह तो हर प्राणी की आत्मा में विराजमान है। वह सर्वत्र है, सर्वव्यापी है। वह निराकार ब्रह्म कहाँ नहीं है? वह यहाँ भी है, वहाँ भी है। वह पास भी है और दूर भी। वह तो ब्रह्मांड के कण-कण में व्याप्त है। इसलिए ईश्वर की पूजा करनी है तो मन से नफरत और हिंसा को निकालकर हृदय में प्रेम भरकर उसकी पूजा करो। ईश्वर की पूजा प्रेम से ही की जा सकती है और उन्हें प्रेमदृष्टि से ही देखा, समझा और अनुभव किया जा सकता है।"

गुरु नानकदेव की बातें सुनकर वहाँ उपस्थित सभी हाजी, काजी, मौलवी हतप्रभ थे और विस्मित भी। गुरु नानकदेव को सुनकर उन्हें यह समझ में आ गया था कि वास्तव में ईश्वर सर्वत्र है, व्यापक है। वह प्रेमस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनंदस्वरूप है। अंततः वे सभी गुरुजी के चरणों में नतमस्तक हो गए। ❑

नन्हा-सा बालक हर रात आकाश को निहारता रहता था। उसकी माँ उसे रोज ऐसा करते देखकर उससे बोली—"बेटा! तुम यह आकाश में क्या देखते रहते हो?" बेटा बोला—"माँ! मैं आकाश में सितारे गिनने का प्रयत्न करता हूँ, पर आकाश इतना विराट है कि मैं तारे गिन ही नहीं पाता।"

माँ प्यार से उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोली—"बेटा! ये सितारे गिनने के लिए नहीं; बल्कि इसलिए बनाए गए हैं, ताकि लोग उन्हें देखकर स्वयं भी प्रकाशपूर्ण जीवन जीना सीखें।"

पर्व विशेष - मकर संक्रांति

भारतीयता का उत्तरायण

सूर्य का उत्तरायण होना वस्तुतः भारतीयता का उत्तरायण होना है। सूर्य के उत्तरायण होने का अर्थ है सूर्य द्वारा मकर रेखा को संक्रांत करना और धनु से मकर तक पहुँचना। ज्योतिष में मकर एक राशि है, जिसके स्वामी शनि हैं। शनि को सूर्यपुत्र कहा गया है। सूर्य भारत की आचार्य परंपरा के प्रतीक भी हैं। वे तीव्र गति के देवता हैं; जबकि शनि मंद गति के।

इसलिए मकर संक्रांति को लेकर यह मान्यता है कि इस दिन भगवान भास्कर अपने पुत्र से मिलने जाते हैं। शनि अंधकार के, तम के, मद्धिम गति के ग्रह हैं। सूर्य की रश्मियाँ बहुत देर से शनि पर पहुँचती हैं। इसलिए मकर का सूर्य पर पहुँचना ब्रह्मांड में सर्वत्र प्रकाश के पहुँचने और सौर परिवार के अंतिम ग्रह तक प्रकाश के प्रकाशित होने का प्रतीक है।

भारत में इस दिन से दिन बड़ा होता है। भारत में दिन का बड़ा होना ही देवताओं का दिन होना है। वहीं उत्तरायण यानी पूर्व से उत्तर की ओर पूर्व एवं उत्तर का साथ होना है। पूर्व से उत्तर अर्थात पहले के प्रकाश को अतिक्रांत कर नया प्रकाश उत्पन्न करना है। यही ज्ञान का परिपक्व होना है। पूर्व और उत्तर मिलते हैं तो ईशान्य कोण बनता है। ईशान्य देवताओं की दिशा है। भारत में अरुणोदय ईशान से प्रशस्त माना जाता है।

महाभारत में भी युयुधस्व भारत के विजय का पर्व भी उत्तरायण में होता है। उत्तरायण में भीष्म के द्वारा देहत्याग का निश्चय केवल भौतिक अर्थ में मृत्यु नहीं, अपितु यह भौतिक लालसाओं का त्याग है, भौतिक सीमाओं से निस्सीम संक्रांति है।

खगोलीय घटना की दृष्टि से मकर संक्रांति सौर परिवार के केंद्र सूर्य से उसकी परिधि शनि तक सबके प्रकाशित होने का पर्व है, जिसे समूचा भारत मनाता है। इसे सभी साथ मिलकर मनाते हैं। इस दिन से खरमास का समापन भी होता है। खरमास यानी कँटीले दिन, जो खर और कुश की तरह चुभते हैं। उस खर और कुश-सी शीत की चुभन से मुक्ति है यह पर्व। शीत से चुभन की मुक्ति का उल्लास स्नान के मेलों में उछाह मारता है।

इस दिन सूर्य अपनी रश्मियों से प्रकाश और ऊर्जा को बाँटते हैं। भारत का जन इस अवसर पर सर्वत्र दान देता है। कहीं चावल के मीठे पीठे तो कहीं धान की खीलों की लाई। तिल और गुड़ तो पूरे देश में एक से प्रचलित हैं। सूर्य की रश्मियों से ज्ञान और प्रकाश आता है, पर यह ज्ञान फलवान तब होगा, जब स्नेह और मिठास मिलाकर बाँटे जाएँ।

तिल का स्नेह, गुड़ की मिठास और तिल एवं गुड़ के बने लड्डू दान देने का मतलब है सर्वत्र नेह-छोह के रिश्ते बढ़ें। सर्वत्र माधुर्य बढ़े। महाराष्ट्र में तो इसको तिल एवं गुड़ के हलवे को बाँटते समय दोहराते भी हैं—'तिल, गुड़ ध्याह आणि गोड़ गोड़ बोला' अर्थात तिल, गुड़ खाओ और मीठा-मीठा बोलो।

तमिलनाडु में इसे पोंगल के रूप में मनाते हैं, जिसमें पूरे परिवेश को कूड़े-करकट से मुक्त कर लक्ष्मीपूजन और पशुधनपूजन करके मिट्टी के बरतनों में खीर पकाई जाती है। खीर पकाना और बाँटना सात्त्विक नेह और पोषण का प्रतीकीकरण है। पोंगल खेती और बेटी की जो भारतीय संस्कृति है, उसको जीवन-व्यवहार में रूपांतरित करने का

दिन है। इसलिए इस दिन बेटी और दामाद को बुलाकर उनका स्वागत-सत्कार किया जाता है।

मकर संक्रांति के दिन ही भगीरथ अपने पूर्वजों महाराज सगर के पुत्रों को मुक्त करने के लिए भागीरथी को लेकर गंगासागर पहुँचे थे। इस दिन सागर से मिलने वाली भागीरथी काशी में उत्तरवाहिनी होती है। इस अवसर पर काशी में स्नान का विधान श्रेष्ठतम है।

कुंभ का पर्व मकर में अपने और दूसरे से मुक्ति का पर्व है। स्वयं के साथ अन्य के पापों की मुक्ति का पर्व भी भारतीयता ही है। संक्रांति का यह पर्व अन्न के योग से पुष्ट शरीर के साथ ब्रह्मांडीय चेतना और ग्रह के साथ सामान्यजन को जोड़ने वाला है। यह नई फसल के घर-खलिहान में आने के साथ देवताओं और प्रकृति के प्रति उल्लासमय कृतज्ञता के प्रकटीकरण का पर्व है।

भोगासी बिहू में यह नृत्य और कला के साथ प्रकट होता है तो पोंगल में स्वच्छता, पवित्रता और सम्मान के रूप में। उत्तर भारत में लोहड़ी के रूप में ओज और नृत्य के साथ प्रसन्नता को नाच-गान से बाँटने के रूप में आयोजित होता है तो गंगा-यमुना के किनारों पर खिचड़ी के दान और गाँव-गाँव सहभोज के आयोजन में लोकपर्व के रूप में आयोजित होता है।

सूर्य के उत्तरायण का यह पर्व केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि जहाँ-जहाँ भारतीय जीवन दृष्टि मिलती है, उन सब देशों में है। बांग्लादेश में पौष संक्रांति है तो नेपाल में माघी संक्रांति या सूर्योत्तरायण। नेपाल की थारू जाति के लिए यह माघी है। थाईलैंड में सोंगकरन है तो लाओस में पी मा लाउ। म्यांमार में इसे थ्रिरआन के नाम से जानते हैं तो कंबोडिया में मोहा संगक्रांत। श्रीलंका में भी यह पोंगल और उझवल तिरुनल के रूप में मनाया जाता है।

यह पर्व देवताओं का नवविहान है तो वैदिक भारत का नववर्ष भी। व्यापारियों और श्रेणी संघटनों के लिए संक्रांति है तो किसानों के लिए खिचड़ी है। सर्वत्र जहाँ भी मकर संक्रांति है, वहाँ तिल है, गुड़ है, कृषि-उत्पादों की खिचड़ी है, दान है, स्नान है, उत्साह है, उमंग है। खिचड़ी सभी अनाजों का मिल जाना है। पककर सुपाच्य हो जाना है। ज्ञान भी पककर तरल हो जाता है।

इसीलिए संक्रांति एक ऐसा पर्व है, जो लौकिक भी है और शास्त्रीय भी। लोक के आयोजन में शास्त्रीयता है और शास्त्रीय अनुष्ठान में लोक की उपस्थिति है। यह त्योहार लोक और शास्त्र का, लौकिक और पारलौकिक का, गीत और गति का, प्रकाश और प्रसार का पर्व है। इसीलिए यह भारतीयता का उत्तरायण पर्व है। ❑

चंदा वृद्धि की सूचना

हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा (सदस्यता शुल्क) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—

1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**300 रुपये**
2. आजीवन 20वर्षीय चंदा (भारत में)	**6000 रुपये**
3. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**2800 रुपये**
अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—	
1. वार्षिक चंदा (भारत में)	**170 रुपये**
2. वार्षिक चंदा (विदेश में)	**1500 रुपये**

महामृत्युंजय मंत्र महिमा

त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

(ऋग्वेद 7/59/12, यजुर्वेद 3/60)

पदार्थ अनुवाद—

यजते हैं हम त्रि-अम्बक को
पक्व सुगन्धि उर्वारुक-सम,
छूटूँ मृत्यु के बंधन से,
अमृत से न कदापि।

इस पद्यमय अनुवाद से स्पष्ट है कि यह मंत्र-अनुष्ठान बंधन से मुक्ति और अमृत से युक्त होने के लिए किया गया है।

यहाँ पर उरु +आ +रुक शब्द का प्रयोग हुआ है। इस उर्वारुक शब्द के पाँच अर्थ हैं-खरबूजा, अमृत, दीप्ति, प्राण और चक्षु। प्रत्येक खरबूजे को 'उर्वरक' कहाने का गौरव प्राप्त नहीं होता है। जो खरबूजा अपने पूर्ण आकार को प्राप्त होकर पूरी तरह पक जाता है, तब उसको 'उर्वारुक' संज्ञा प्राप्त होती है; क्योंकि वह स्वयं बेल से विलग हो जाता है और तब वह अमृत के समान गुणकारी हो जाता है। उसके सेवन से दीप्ति बढ़ती है, नेत्र-ज्योति बढ़ती है, प्राणबल बढ़ता है।

इस संदर्भ में एक कथा है। घटना कल्प के आरंभ की है। कथा शिवपुराण, हरिवंशपुराण, मार्कंडेयपुराण, देवीभागवत, महाभारत, पद्मपुराण, वायुपुराण आदि में विस्तार से वर्णित है। अंगिरा के पुत्र का नाम 'जीव' था। वे ही कालांतर में 'देवगुरु बृहस्पति' कहलाए। महर्षि भृगु के पुत्र का नाम 'कवि' था, जो कालांतर में दैत्यगुरु शुक्राचार्य के रूप में विख्यात हुए।

'भृगु' और 'अंगिरा' महर्षियों के बीच अगाध प्रेमभाव था। अंगिरा का गुरु आश्रम वैदिक ज्ञान का प्रमुख केंद्र था। फलतः महर्षि भृगु ने अपने पुत्र कवि को उनके आश्रम भेजा। कवि और जीव साथ-साथ अध्ययन करने लगे। दीक्षा के पूर्व महर्षि अंगिरा ने निज पुत्र जीव को विशेष दीक्षा दी। उनका यह आचरण बालक कवि के मन में काँटे के समान चुभ गया।

वे आश्रम छोड़कर विशेष ज्ञान की खोज में निकल पड़े। एक दिन वे महर्षि गौतम के आश्रम के पास चिंतित मुद्रा में बैठे थे। महर्षि गौतम ने उनसे उनकी चिंता का कारण पूछा। कवि विनम्र भाव से बोल पड़े—"ऋषिवर! वह कौन-सा विशेष ज्ञान है, जो महर्षि अंगिरा ने निज पुत्र जीव को दिया और मुझे नहीं दिया।" महर्षि गौतम ने उत्तर दिया— "वत्स! तुम्हारी शंका का समाधान केवल तीनों कालों के द्रष्टा परमात्मा त्र्यंबक ही कर सकते हैं।"

बालक कवि ने पुनः प्रश्न किया—"परमात्मा का साक्षात्कार तो तप से ही संभव है ऋषिवर! फिर मैं किस मंत्र से और किस स्वरूप की अवधारणा करके प्रभु का साक्षात्कार पाऊँ? मेरा मार्गदर्शन कीजिए ऋषिवर।" गौतम ऋषि ने उत्तर दिया— "वत्स! आचार्यों के परम आचार्य और विद्याओं के जनक देवाधिदेव शंकर हैं। उन्हीं की शरणागति प्राप्त करो।"

बालक कवि ने '**ॐ नमः शिवाय**' को गुरु मंत्र मानकर गौतमी गंगा (गोदावरी) के तट पर तप आरंभ

किया। वर्षों की तप, साधना के पश्चात भगवान शंकर प्रकट हुए। बालक के रोम-रोम में प्रेम पुलकित हो उठा। वह अब बालक नहीं, युवा हो चुका था। उसने दीनभाव से शिवचरणों में निवेदन किया।

भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर कहा—"वत्स! मैं तुम्हें ऐसी विद्या का ज्ञान दे रहा हूँ, जो मेरे अतिरिक्त किसी अन्य देव-दानव, गंधर्व-मानव अथवा और किसी को भी ज्ञात नहीं है।" भगवान शंकर ने जो परमज्ञान प्रदान किया, वह ही कालांतर में 'महामृत्युंजय मंत्र' और 'महासंजीवनी विद्या' के रूप में धर्मग्रंथों में वर्णित हुआ।

उसी परमज्ञान को प्राप्तकर बालक कवि अपने ज्ञानबल से दैत्यगुरु के पद पर भी प्रतिष्ठित हुए। 'स्वरोचिष मन्वंतर' में ऋषि अंगिरा-पुत्र 'जीव' 'सप्तर्षि-प्रधान' कहलाए और वे 'देवगुरु बृहस्पति' के रूप में सम्मानित हुए।

उन्हीं देवगुरु बृहस्पति ने वामन अवतार के समय स्वयं प्रभु वामन को वेद, षट्शास्त्र, स्मृति आदि की शिक्षा दी थी। वामन के रूप में जब दान हेतु भगवान वामन ब्राह्मण रूप धरकर महाराज बलि के द्वार पर पहुँचे तो दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने अपने त्रिकालदर्शी ज्ञान से उन्हें सहज ही पहचान लिया। कालद्रष्टा दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने सचेत किया—"महाराज! ये वामन नहीं, विराट रूप भगवान विष्णु हैं। छल से आपका सब कुछ हरण करने आए हैं।"

तीनों कालों का द्रष्टा होने का वरदान आचार्य शुक्राचार्य को भगवान शंकर से प्राप्त हुआ था। उन्होंने महामृत्युंजय महामंत्र का निरंतर बारह वर्षों तक अनुष्ठान किया था। उन्हें मंत्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी।

देवगुरु बृहस्पति को महामंत्र की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी थी और वे महासंजीवनी विद्या से भी वंचित रह गए थे। देवगुरु बृहस्पति ने अपने पुत्र 'कच' को ज्ञानप्राप्ति हेतु दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास भेजा था। दैत्यगुरु ने बिना किसी भेदभाव किए हृदय से लगाकर गुरुभाव से देवगुरु पुत्र 'कच' को वह ज्ञान प्रदान किया था।

'महासंजीवनी' विद्या की साधना के लिए महामृत्युंजय मंत्र और गायत्री मंत्र का मिश्रित अनुष्ठान वर्षों तक तपस्या के द्वारा करना पड़ता है। तभी व्यक्ति को पूर्णसिद्धि प्राप्त होती है। इसीलिए कहा गया है—

मृत संजीवनी नाम विद्या या मम निर्मला।
तपोबलेन महता मय्यैव परिनिर्मिता॥

महामृत्युंजय मंत्र की अनुष्ठान विधि इस प्रकार है। 'महामृत्युंजय मंत्र' की साधना का समय सूर्यास्त के आधा घंटा पूर्व निर्धारित किया गया है, इस मंत्र-साधना के साथ-साथ सूर्योदय के आधा घंटा पूर्व गायत्री मंत्र की साधना अनिवार्य मानी गई है। वैसे इस मंत्र को सर्वकालिक, सार्वभौमिक कहा गया है अर्थात इस मंत्र का जप कहीं भी एवं कभी भी किया जा सकता है।

महामृत्युंजय मंत्र की अपार महिमा है। अनुष्ठान करने वाले विभिन्न कामनाएँ लेकर अनुष्ठान किया करते हैं। सनातनी इस मंत्र का अनुष्ठान ग्रहों, उपग्रहों के कुप्रभाव के शमन के लिए करते हैं तथा मरणासन्न व्यक्ति के त्राण के लिए भी करते हैं। आयुर्वेद में रोग-निवारण के लिए इस मंत्र का अनुष्ठान वर्णित है।

वेदांती इस मंत्र का अनुष्ठान माया से मुक्ति और ब्रह्मदर्शन के लिए किया करते हैं। तांत्रिक इसका अनुष्ठान तांत्रिक सिद्धियों की प्राप्ति हेतु किया करते हैं। योगी मंत्र का अनुष्ठान अमरपद प्राप्ति के लिए किया करते हैं।

इस मंत्र के अनुष्ठान से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है, स्वास्थ्य और दीर्घायु की भी प्राप्ति होती है। मन-प्राण आनंदित होता है और प्राणी मोक्षमय अमृत तत्त्वों से संयुक्त रहता है। इसी कारण मंत्र के '**मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्**' अर्द्धवाक्य में कामना की गई है कि '**मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय**' मृत्यु के बंधन से '**मुक्षीय**' अर्थात मुक्त हो जाऊँ, '**अ-मृतात्मा**' अमृत से नहीं।

'अमृत' दो शब्दों के मिश्रण से बना शब्द है—अर्थात मृत नहीं, जो कभी नहीं मरता है। व्याख्या में कहा गया है—'**अमृतान् निवर्तते मृत्युः**' अर्थात अमृत से मृत्यु का निवारण होता है। पूर्ण आयु को जो प्राप्त करता है, वही अमृत प्राप्त करता है।

'**य एव शतं वर्षाणि यो भूयांसि जीवति स हैवैत दमृमाप्रोति**' जो सौ वर्ष या सौ वर्ष से अधिक स्वास्थ्य के साथ सुखपूर्वक जीता है, वह अमृत है। **अमृतं वै प्राणः** प्राण का नाम अमृत है; क्योंकि प्राण से ही मनुष्य बनता है। '**यद् भेषजं तदमृतम्**' औषधि ही अमृत है; क्योंकि वह रोग का निवारण करके मृत्यु से बचाती है। '**अमृतं हिरण्यम्**' स्वर्ण अमृत है; क्योंकि स्वर्ण धन से आयुवृद्धि के साधन उपलब्ध होते हैं।

'**आदित्योमृतम्, आग्निरमृतम्, वायुरमृतम्**' अर्थात सूर्य अमृत है, अग्नि अमृत है, वायु अमृत है; क्योंकि इनसे आयु, स्वास्थ्य और नीरोगता का संपादन होता है। '**यद्मृतं तद् ब्रह्म**' जो अमृत है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म अमृत है; क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति से प्राणी मोक्ष को प्राप्त कर जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। '**तमेव विधित्वाति मृत्युमेति**' उस ब्रह्म को जानकर मनुष्य मृत्यु को पार करता है।

ब्रह्म को जानने का अर्थ 'त्र्यंबक' की संगति है। संगति—उपासना, आत्मसमर्पण और आराधना से होती है। फलतः कहा गया है '**त्र्यंबकं यजामहे**'। वे ही दिव्य द्रष्टा, पावन द्रष्टा और सर्वद्रष्टा हैं। परमात्मा ही त्र्यंबक हैं। मृत्यु से मुक्त और अमृत से युक्त होने के लिए त्र्यंबक से तादात्म्य होकर प्रत्येक साधक को निरंतर ऐसी साधना करनी चाहिए, जिससे उसके जीवन में त्रुटियों और अपूर्णताओं का पूर्तिकरण हो। प्रार्थना या मंत्र से प्रार्थी में पात्रता का संपादन होता है, शक्ति तथा क्षमता का संचार होता है और उसके प्रभाव से वह अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

गायत्री के मंत्रद्रष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का तपोतेज ऐसा था, जैसे भगवान सूर्य अपनी सहस्त्र रश्मियों से स्वर्ण राशि उड़ेले हों। उनकी स्वर्णिम आभा देदीप्यमान रहती थी। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र गायत्री मंत्र के द्रष्टा कहे जाते हैं।

पृथ्वी पर जंबूद्वीप (एशिया) के उपमहाद्वीप भारत के मनुष्यों में आर्य (श्रेष्ठ) के ज्ञानसंग्रह की परंपरा थी। वेदमंत्रों के द्रष्टा ऋषियों में महामंत्र गायत्री के महर्षि विश्वामित्र तथा उनके पहले पुत्र मधुछंदा का प्रमुख योगदान है। इस परंपरा में राजा विश्वरथ ने संसार से निवृत्त होकर राजर्षि विश्वामित्र बनकर घोर तप किया।

वैदिक मंत्रों के द्रष्टाओं में महर्षि वसिष्ठ भी प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मर्षि से सूर्यवंशी क्षत्रियों में राजा सत्यव्रत ने अपने राज्य को देवराज इंद्र के स्वर्ग के समान संपन्न बनाने के लिए आग्रह किया। उन्होंने तथा उनके सौ अर्थात अनेक पुत्रों तथा शिष्यों ने इसे अस्वीकार किया था।

अत: राजन् के आग्रह पर राजर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ किया, जिसका ब्रह्मर्षि द्वारा प्रबल विरोध हुआ। इससे राजर्षि को नई सृष्टि भी रचनी पड़ी, जिसमें जौ के समान गेहूँ, गाय से उत्तम दूध की भैंस तथा मानव आकृति का नारियल आदि बनाने की कथा वर्णित है। इस प्रकार राजा सत्यव्रत को भी इंद्र समान कहे जाने के विरोध में उन्हें त्रिशंकु अर्थात कुछ ही लोगों का समर्थन मिल पाया।

राजर्षि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनने के लिए अधिक प्रयास करना पड़ा। उनको स्वीकृति नहीं देने वाले ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के पुत्रों तथा शिष्यों का वध भी करना पड़ा।

अंत में ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने उन्हें ब्रह्मर्षि के रूप में स्वीकार किया। राजा त्रिशंकु के वंश में महाराजा हरिश्चंद्र सत्यवादी हुए। उनको विश्व में प्रतिष्ठित करने के लिए उनको राज-पाट से हटाकर काशी में घोर कष्टों का जीवन उन्होंने दिया। महारानी तथा पुत्रसहित दास बनकर भी वे सत्य से नहीं डिगे। इससे सफल राजा हरिश्चंद्र बहुप्रशंसित हुए।

उसी समय विश्वामित्र के क्रांतिकारी विचारों में जन्म से जाति के स्थान पर कर्म से वर्ण-व्यवस्था में परिलक्षित हुआ। महर्षि भृगु के पुत्र ऋषि जमदग्नि की पत्नी महर्षि विश्वामित्र के परिवार की थीं, जिनके पुत्र महर्षि राम थे। इनके हाथ में सदा फरसा शस्त्र रहने से इन्हें परशुराम कहा गया।

ये शिवभक्त तथा महान तपस्वी थे। पिता की आज्ञा से उन्होंने माता का वध किया और पिता से वरदान प्राप्त किए थे। वे हैहयवंशी क्षत्रिय राजा कार्तिकेय अर्जुन के सहस्त्र हाथों के समान बलशाली थे। अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए उन्हें कार्तिकेय अर्जुन को मारना पड़ा तथा बाद में उसके सहयोग के लिए उसके वंश के क्षत्रियों से 21 युद्ध भी करने पड़े थे—जिसके प्रायश्चित के बाद वे तपस्या में लीन रहते थे।

महाराजा जनक के धनुष यज्ञ में महर्षि विश्वामित्र के साथ आए राम-लक्ष्मण से मुलाकात हुई। राम की शालीनता तथा छोटे भाई लक्ष्मण की निर्भीकता से प्रभावित होकर अपना धनुष श्रीराम को देकर तप करने वे पूर्ववत् महेंद्र पर्वत पर चले गए थे।

लाखों वर्षों के त्रेतायुग के अंत की इस कथा के बाद लाखों वर्षों के द्वापर युग के अंत में महाराज

दुष्यंत पुत्र भरत के वंश में महाराज शांतनु से गंगवंशी राजकुमारी के पुत्र देवव्रत थे। वे आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा धारण करने के कारण से भीष्म कहे गए। काशीराज की तीसरी पुत्री के पक्ष में महर्षि परशुराम से युद्ध की कथा है। इसमें भी इन्होंने भीष्म से समझौता किया था।

उस समय ये केवल ब्राह्मणों को ही युद्ध विद्या सिखाते थे, जैसे गुरु द्रोणाचार्य केवल राजकुमारों को। यद्यपि वे ब्राह्मण थे और क्षत्रियों को शस्त्र संचालन में पारंगत कर रहे थे। पांडवों की माता कुंती के विवाह से पूर्व सूर्य-आराधना से पुत्र कर्ण का जन्म हुआ। उनका पालन सूत के यहाँ होने से भेद रहा और उस बालक को द्रोणाचार्य से शिक्षा नहीं मिली। कर्ण ने महर्षि परशुराम से ब्राह्मण कुमार बनकर शिक्षा ली।

एक दिन वे इन गुरु परशुराम के सिर को गोद में रखकर गाढ़ी निद्रा में सो रहे थे। उनकी निद्रा में विघ्न न हो जाए इसलिए एक भँवरे को कर्ण ने जाँघ में दबा लिया था, जिसने उनकी जाँघ को काटना शुरू किया और कर्ण का खून बहने लगा। वह सहन करता हुआ स्थिर रहा।

इस पर परशुराम जी की नींद खून की धारा से खुल गई। उन्हें लगा कि यह क्षत्रिय कुमार है, जो इतना सहनशील है। अत: उन्होंने कर्ण को असत्य वचन के लिए शाप दिया था कि यह विद्या उचित समय में काम नहीं आएगी। महाभारत युद्ध में वह अर्जुन से मारा गया था। उस समय महर्षि विश्वामित्र का वर्णन नहीं मिलता है। इनका उल्लेख त्रेता के अंत में व द्वापर के प्रारंभ में है। जब ये पुष्कर क्षेत्र में हजार वर्ष के लिए तपस्या कर रहे थे तो देवराज इंद्र ने घबड़ाकर तपस्या भंग करने के लिए वहाँ अप्सरा मेनका को भेजा। उन्होंने मेनका से विवाह कर लिया। मेनका उनकी पुत्री शकुंतला को कण्व ऋषि के आश्रम में छोड़ गई थी। इनसे हस्तिनापुर के चंद्रवंशी महाराज दुष्यंत का गंधर्व विवाह हुआ था। उन्हीं के पुत्र भरत के नाम पर यह देश है।

उसके बाद की कथाओं में महर्षि विश्वामित्र का उल्लेख नहीं मिलता। इससे पूर्व महाराजा दशरथ अयोध्या में सूर्यवंशी महाप्रतापी राजा थे, जिनकी वृद्धावस्था में पुत्रेष्टि यज्ञ से चार पुत्र पैदा हुए। विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को अपने आश्रम में राक्षसों के उत्पात से यज्ञ-रक्षा के लिए ब्रह्मर्षि वसिंष्ठ की संस्तुति से ले गए थे।

उनको कुलगुरु वसिष्ठ के योगवासिष्ठ का ज्ञान दिया। शास्त्रार्थ का भी अतिरिक्त अभ्यास उन्होंने कराया। अनेक आयुधों को प्रदान कर ताड़का तथा सुबाहु का अंत कराया। विश्वामित्र महाराजा जनक के धनुषयज्ञ स्वयंवर में उन राजकुमारों को ले गए तथा बीच में गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के कलंक का समाधान कराकर उनको शिलावत् से प्रतिष्ठित कराया।

सुखदु:खे जन्ममृत्यु दैवादेवेति निश्चयी।
साध्यादर्शी निरायास: कुर्वन्नपि न लिप्यते॥

—अष्टावक्र गीता11/14

सुख-दु:ख, जन्म-मरण, दैवयोग से ही प्राप्त होता है—ऐसा निश्चय करने वाला पुरुष साध्य कर्मों को देखता हुआ और प्रयासरहित कर्मों को करता हुआ भी उनमें लिप्त नहीं होता है।

इस प्रकार ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का उल्लेख मिलता है। उन्होंने युग को परिष्कृत किया एवं नई दिशा प्रदान की। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र गायत्री मंत्र के द्रष्टा हैं। उन्होंने बुद्धि को परिष्कृत कर नया इनसान एवं नया युग गढ़ने का अद्भुत प्रयास किया। आर्य संस्कृति के प्रादुर्भाव में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। ❑

गंगा का अविरल-निर्मल प्रवाह

अर्चना में मृदु सुर नहीं शोर है,
पतितपावनी को घेरे मलिन घोर है।
समेटे यह कलुष तेरा मेरा,
बहुत उदास बहती है गंगा।
कहाँ किसका मन है अब चंगा,
बहुत उदास बहती है गंगा।

सुश्री मीरा कुमार की उक्त पंक्तियाँ गंगा की पीड़ा और आज के समाज की संवेदनहीन दशा को अभिव्यक्त करती हैं। एक स्थल पर गंगा की धारा को टिहरी में कैद किए जाने पर कवि को लिखना पड़ा—

गंगा नहीं रही अब केवल बची निशानी।
कहने को रह गई है बस गंगा की कहानी॥
राजा जो उसको लाए, राजा ने उसको बाँधा।
नाले में ढूँढ़ते हो क्यों गंगा जी का पानी॥

गंगा की जो आज दुर्दशा है, उसको लेकर साधु, संत-महात्मा, तपस्वी और सामान्य जन सभी चिंतित हैं। गंगा को समझने के लिए गंगा के लोकजीवन से संबंधित आस्था प्रतीकों, पूजा अभिप्रायों अर्थात गंगा आरती, गंगागीत, दीपदान, विवाहोपरांत कंकणमोक्ष संबंधी जनविश्वास को भी समझने की आवश्यकता है। इस भावनात्मक विचारगंगा पर अब भी संकट आया है।

गंगा पतितपावनी है, जब तक पतित लोग रहेंगे तब तक गंगा को रहना है। हिमालय से समुद्र को जोड़ने वाली गंगा जल-प्रवाह है, परंतु साथ ही गंगा विचार और संस्कृति हैं, परंतु हमारे विश्वासों में अपनी सारी विशालता, पवित्रता के साथ ही वे सर्वाधिक पूज्य भी हैं। भारतीय विश्वासों में पूजा, विवाह, मंगल, दीपार्चन और महाश्मशान जैसी शतक्रिया आस्थाओं में ब्रह्मलोक से शिवलोक तक, कमंडलु से जटा तक सुरसरि देवनीत के रूप में प्रणम्य हैं।

जलपूजा में वे जलदेवता वरुण से भी अधिक प्रणम्य हैं। आयुर्वेद में वे सबसे बड़ी जलौषधि हैं। पाप-प्रक्षालन की सबसे बड़ी सामर्थ्य उन्हीं में है। वे जहाँ अपनी धारा और दिशाएँ बदलती हैं, अपने उद्‌भव से लेकर समर्पण तक वे सब तीर्थ हैं। गंगा का अनेक ऋषियों से संबंध है।

गंगा का उल्लेख ऋग्वेद में दो बार आता है। शतपथ ब्राह्मण, जैमिनी ब्राह्मण और तैत्तिरीय आरण्यक में गंगा का कई बार उल्लेख हुआ है। गंगा की महिमा सर्वत्र कही गई है। अधिकांश पुराणों में गंगा के संबंध में जो चर्चा है, वह एकदूसरे से मिलती-जुलती है। ऋग्वेद के दशम स्कंध में गंगा का उल्लेख इस प्रकार है—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्‌वृधे वितस्तयार्जीकीये
शृणुह्या सुषोमया॥ *—ऋग्वेद 10.75.5*

अर्थात हे गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलज) पुरुष्णी (रावी) असिक्नी (चिनाव) के साथ मरुद्‌वृधा (चिनाव और झेलम के बीच की या चिनाव की पश्चिम दिशा वाली मरुवर्दवन नाम की सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), सुषोमा (सोहान) और आर्जीकीया (व्यास) तुम वंदनीय हो।

वाल्मीकिकृत गंगाष्टक में गंगा की महत्ता का वर्णन है—

गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारि शिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥

मत्स्यपुराण के 126वें अध्याय में गंगा की महत्ता का वर्णन किया गया है—

पवित्राणां पवित्रं च मंगलानां च मंगलम्।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥

वह पवित्रों को पवित्र करने वाली, मंगल से भी परम मंगलदायक, शिव जी के सिर के जटाजूट से निकली सब पापों को हरने वाली शुभदा हैं।

शंकराचार्य ने भी गंगाष्टक में गंगा की महिमा का गान किया है—

निधानं धर्माणांकिमपि च विधानं नवमुदाम,
प्रधानं तीर्थानाममल परिधानं त्रिजगतः।
समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियाम,
त्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः॥

अर्थात हे माता! तुम्हारा यह जलमय शरीर जो कि धर्मों का खजाना है, मुमुक्षुजनों की नैतिक क्रिया है तथा बुद्धिमानों की बुद्धि का समाधान (पात्र) और कुबुद्धियों का तिरोधान (आच्छादन) एवं लक्ष्मी का आश्रय है—वह मेरे संतापों को दूर करे।

स्कंदपुराण में गंगा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए राजा भगीरथ द्वारा कहा गया है—

अन्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दृष्टवा लाकान्हि गच्छन्ति पुनरावृत्ति दुर्लभाः॥

हनुमान जी ने गंगा की स्तुति करते हुए कई श्लोक रचे यथा—

परं त्वदीये पुलिने पुलिन्दा
मंदाकिनीलक्षित पापकन्दाः।
मन्दारमाला मल मौलिमाला
न लोकपाला न च भूमिपाला॥

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने भी गंगा की महिमा का गान करते हुए गंगा की प्रार्थना की—

हरनि पाप त्रिविध ताप सुमिरत सुरसरित।
विलसति महि कल्प-बेलि मुद-मनोरथ फरित॥
तो बिनु जगदंब गंग, कलियुग का करित?
घोर भव अपारसिंधु तुलसी किमि तरित॥

कविवर केशवदास ने गंगा की स्तुति करते हुए लिखा—

भूतल का बेनी-सी त्रिवेनी सुभ सोभिजात
एक कहैं सुरपुर मारग विभातं है।
एक कहैं पूरन अनादि जो अनंत कोऊ
ताकौ यह के सौदास द्रव्य रूप गात हैं॥
सब सुख कर सब शोभा कर मेरे जान
कौनो यह अद्भुत सुगंध अवदात हौ।
दरस परस छूते थिर चिर जीवन को
कोटि-कोटि जन्म की कुगंधि मिट जात है॥

पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी में सविस्तार गंगा की महत्ता का वर्णन है; जिसका हिंदी पद्यानुवाद पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं किया है—

विभूषितानंगरिपूत्तमांगा,
सद्यः कृतानेक जनार्ति भंगा।
मनोहरोत्तुंग चलत्तरंगा,
गंगा ममांगान्यमली करोतु॥
आभूषित तनु विनाशक श्रेष्ठ अंगा।
शीघ्र कृताभितमनुष्यकलेश भंगा॥
सौंदर्यमान अतितुंग चलत तरंगा।
मो अंग सो करहि पावन मातु गंगा॥

प्रख्यात कवि पद्माकर ने भी सोलह पदों में गंगालहरी लिखी। एक पद निम्न है—

एक महापात की सुगाति की दशाविलोकि
देत यों उराहनों सु आठहू पहर है।
मीच समै तेरो उत आप गयों कंठ रत

व्याप गयो कंठ कालकूट सो जहर है॥
आप चढ़ी सीस यह कसबी सी दीन्ह
औ, हमार सीस वारे की लगाई अटहर है।
मोहि करि नंगा अंग अंगनि भुजंगा बाँधे
ऐरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है॥

कविरत्न पंडित सत्यनारायण ने भी गंगा प्रार्थना अपनी कविताओं के माध्यम से की है—

जयति जयति जननी प्रभु-पद पद्म प्रभासिनी
ब्रह्मकमंडलु वासिनी।
शंकर सुजस विकासिनी कलिमल हरनी।
प्रकृति छटा सरसावनि बर विनोद परसावनि
सुर-नर-मुनि हरसावनि मुद मंगल करनी॥

पंडित अयोध्या सिंह ने गंगास्तव लिखा था, उसका एक अंश इस प्रकार है—

पूजन-भजन कर कु-जन बने
भारत का जन-जन जानता है इसको।
भव में भवानी पति-सा ही भूति मान किया
भाव से भरति भावना दे जिस तिसको।
हरिऔध सगर सुअन का सँवारा जन्म
तारा उसे कोई तार पाता नहीं जिसको।
सुधा को उधार वसुधा तल सहारा बनीं
सुरसरि धारा ने सुधारा नहीं किसको।

कविश्रेष्ठ देवी प्रसाद शुक्ल ने भी अपने गंगास्तव में मुक्तकंठ से गंगा की सराहना, वंदना की है—

छाय रही महिमंडल में वरकीरति सुंदर धार नई।
आपहिं आर अपार नशावति
पाप पहारन आ गई है।
धारति धर्म सुकर्म सुधारति त्यों
यमदूतन जार जई है।

स्वामी रामतीर्थ ने भी गंगा की प्रार्थना की—

गंगा तोरी सदा बलिहारी जाऊँ
गंगा गंगा कहत ही निर्मल होत शरीर।
गान आदि ध्याये सुयश न्हाये रहत न पीर।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी काव्य रचना में गंगा स्तुति की रचना की—

यह घट इतना कहाँ हाय जो इसमें रहती गंगा।
मुझे हाथ धोने का अवसर दे तू बहती गंगा॥
देखे हैं कितने युग तूने क्या कहती है गंगा।
आज हमारे पाप ताप तू ही सहती है गंगा॥

ग्राम्यगीतों में भी गंगा की छटा का उल्लेख मनोहारी है। एक गीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

कोई माँगे अनधन कोई धेनु गाय।
भगीरथ माँगै छवि गंगा जी कै धार॥
मातु गंगा लागि भगीरथ बेहाल
आगु आगु भगीरथ भागल जायि।
पिछु पिछु सुरसरि परसलि जाथि॥

हिंदी के महाकवि सूरदास ने भी गंगा के वैभव का बखान किया—

गंग तरंग बिलोकत नैन अतिपुनीत विष्णु
पादोदक महिमा निगम पढ़त गुन चैन।
परम पवित्र मुक्तदाता भगीरथी भई वरदैन॥
त्रिभुवन हार सिंगार भगवती
सलिल चराचर जाके ऐन।
सूरदास विधना के तप ते प्रगट भई संतत सुखदैन॥

कविवर रत्नाकर ने कहा—

ऐसी काट नाहिं नखमाहिं नर के हरि के
ऐसी विकराल कालहू की ना कृपानी हौ।
दंग होति धारना न होत निरधार नैकु
गंग तवन धार मैं धारयो धौं कौन पानी है॥

कविवर लाला भगवानदीन ने काशी में गंगा की छटा का वर्णन करते लिए लिखा—

प्रात समैं काशी पै हवाई जान आयो एक,
ताही देखि भाव यहै दीन उर आयो है।
गंगै सेस पतनी विचार खगराज मानो,
पकरन हेत आय नभ मँडरायो है।

न्हानवारी नागरी नवेलिन सबैंही मिलि,
देखिबे के हेत लोचनन यों उठायो है।
गंगा के बचाइबे को मीन को समूह मानो,
नीरते निकसि नभ और धुकि आयो है॥

लोकजीवन में सौभाग्यवती को आशीर्वाद भी गंगा, यमुना की अखंड धारा से देने का विधान है।

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा।
जब लगि गंग जमुन जल धारा॥

गंगा सर्वकल्याणस्वरूपा मंगलविधायिनी और दु:खविनाशिनी हैं—

गंग सकल मुद मंगल मूला।
सब सुख करनि हरनि सब सूला॥
सुरसरि सम सब कहँ हित होई। —मानस

तुलसी के मानस में ही नहीं—कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका, दोहावली, रामलला नेहछू, पार्वती मंगल, बरवै रामायण, हनुमान बाहुक, श्रीकृष्ण गीतावली और रामाज्ञा प्रश्न में भी गंगा का वर्णन मांगलिक संदर्भ में आया है।

कवि मतिराम ने लिखा—

पारावार प्रीतम की प्यारी हवै मिली हैं गंगा
बरनत कोई कवि कोविद निहारि कै।

सेनापति ने लिखा था—

रोग करें दूरि, भोग राखैं भरपूरि एक
अमर करन मूरि मानहूँ सुधा रहैं।
धरम अधार, सेनापति जानी निरधार
गंगा तेरी धार कामधेनु है दुधार है॥

कवि सबल सिंह चौहान ने लिखा—

महापातकी जग में अहई।
गंगा परसत पाप न रहई॥
धन्य भाग जो लेत तरंगा।
पापनाश अरु निरमल अंगा॥
कोटिन विप्र गऊ के दाना।
नहिं गंगा के नीर समाना॥
सब तीर्थन में गंग प्रधाना।
श्रुति स्मृति भागवत बखाना॥

इसी प्रकार आधुनिक काल के हिंदी साहित्य में कवियों ने गंगा की महत्ता का वर्णन किया है।

बेढब नारसी ने लिखा—

पास में पावन हमारे गंग है
और शंकर की सुहानी भंग है।
रोज होली की यहाँ बेढब छटा
इसी से वाराणसी का रंग है॥

श्रीकुलदीप नारायण राय झड़प ने लिखा—

दरस परस सुमिरत मन चंगा।
जह मइया जग पावनी गंगा॥
लहर लहर में लहर तिरंगा।
जय मइया जग पावनी गंगा॥

श्री हरिनंदन सुकुल ने लिखा—

पैज भगीरथ तेरी बदौं।
जग के हित लाइ बहाई दी गंगा॥

श्रीहरिराम द्विवेदी ने लिखा—

मर्यादा है इस देश की पहचान है गंगा।
पूजा है धरमदीन है ईमान है गंगा॥

पं० जगदीश चंद्र मिश्र ने लिखा—

दूषित जो करते जल को
उनको सद्बुद्धि कहो कब दोगी।
अमृतधारा को छोड़ तुम्हारी
है औषधि खोज रहे कहाँ रोगी॥
गंग तेरे संग संग कविता बहेगी सदा
काव्य अनुरागी मुक्त कंठ दुहराएँगे॥

एक प्रख्यात लेखक ने भी लिखा—

हरिपद नख में रही समाई।
बड़े भगीरथ तप से आई॥
करने मुक्ति प्रदान, मातु हे गंगे।
अतिशय करुणावान मातु हे गंगे॥

डॉ. मुरलीधर दुबे ने लिखा—

हे गंगे तेरा क्या कहना
सदियों से बहती आई हो।
भारत की भोली जनता का
अघ दूषित सहती आई हो।
तेरा जल अमृत लगता है
कृमि हीन मनुज जो ग्रहण करे।

पं. कौशिक रविंद्र उपाध्याय ने गंगा महिमा भावविभोर होकर गाते हुए कहा—

गंगा तुम्हारी गाथा कितनी धवल विमल है।
अमृत को कौन पूछे जब पास गंगा जल है॥

डॉ. उमाशंकर चतुर्वेदी कंचन ने अपनी गंगा शीर्षक काव्य रचना में लिखा है—

भारत भारतवर्ष नहीं यदि
गंगा की कोई कहानी न होगी।
आरत कौन हरेगा जनों का
धरा पर तू जो भवानी न होगी।
घाट के ठाठ निहारेगा कौन
जो पाट में तेरे रवानी न होगी।
सागर का नहिं मान रहेगा
हे गंग जो तू वरदानी न होगी॥

श्रीकांत तिवारी 'सदेह' ने अपनी पुस्तक गंगा में लिखा—

पावनता का आश्रय जिसको सब गंगा कहते हैं।
जिसके तट पर कुटी बनाकर संन्यासी रहते हैं॥
जिसके तट के नगर हो गए अद्‌भुत तीरथधाम।
ऐसी पावन गंगा मैया को है कोटि प्रणाम॥
सत्य कहा जाए तो गंगाजल ही जीवन है।
रिपु रज पावक पाप सभी का, करता घोर शमन है॥
इसका जल पीकर मनुष्य पा जाता है अमरत्व।
और सभ्यता विकसित होती ऐसा बड़ा महत्त्व॥

इतना ही नहीं, अनेक अन्य विशिष्ट कवियों ने भी गंगा के लिए लिखा है, किंतु गंगा जो हमारे लिए जीवन से अधिक कीमती व महत्त्वपूर्ण हैं, वे तब भी प्रदूषित हैं। जब हम गंगा को बचाएँगे, तभी जीवन बचेगा। सभ्यता बचेगा। अस्तित्व बचेगा। हम सब संकल्पपूर्वक उद्यत हों कि गंगा की पवित्र एवं निर्मल धारा पुनः प्रवाहित हो। ❑

यज्ञ की वेदी पर बैठा नारियल, कपूर पर क्रोधित होते हुए बोला—''तुच्छ जीव! मेरा शरीर बड़ा है, तू रोज मेरे समीप बैठ कर मेरा स्थान खींचने का प्रयास करता है। अभी तुझ पर गिर जाऊँ तो तेरा कचूमर ही निकल जाए।'' कपूर मुस्कराते हुए बोला—''यह तो और अच्छी बात है नारियल भाई! ऐसे में तो मेरी सुगंधि और सभी दिशाओं में पहुँच जाएगी।'' क्रोध को शांति से ही जीता जा सकता है।

अंतर्मुखी व्यक्तित्व

अंतर्मुखी होने का तात्पर्य है—अपने विचार और भाव को अंतर्यात्रा की ओर अग्रसर करना। इससे ऊर्जा का बिखराव नहीं होता है। इसलिए अंतर्मुखता का विकास जीवन का परम आदर्श माना गया है। जो उस अवस्था का स्पर्श कर लेता है, उसका व्यक्तित्व समता और सहजता का प्रतीक बन जाता है। वह परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव से बहुत कम प्रभावित होता है।

संसार में संयोग और वियोग तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता का चक्र निरंतर चलता रहता है। संत कबीर ने लिखा है—

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥

यहाँ दो पाटों से सुख-दुःख, हर्ष-शोक व संयोग-वियोग की घटनाओं का संकेत है। जीवन के क्षितिज पर विविध प्रकार के रंग बनते और मिटते रहते हैं। हर व्यक्ति को उनका अनुभव करना होता है। यह एक जटिल समस्या है, जिससे विशिष्ट ज्ञानी व्यक्ति भी विचलित हो जाते हैं।

संत कबीर ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हुए दूसरे पद में कहा है—अनाज के दो दाने चक्की की कीली से संबद्ध और संयुक्त होते हैं, वे उन परिस्थितियोंरूपी पाटों के प्रभाव से आहत नहीं होते हैं तथा स्वयं को सुरक्षित रखने में सफल हो सकते हैं।

जिनका चिंतन अध्यात्म की धुरी पर केंद्रित होता है—वे उनकी भाषा में दो चक्की की कीलियों से लगे हुए अनाज के दानों के समान हैं। नैतिक आदर्शों का अनुसरण करने के लिए जीवन में आध्यात्मिक भूमिका का विकास जरूरी है। आध्यात्मिकता माँ है, नैतिकता पुत्री है—दोनों का घनिष्ठ संबंध है। आध्यात्मिकता, अंतर्मुखता तथा संत कबीर की भाषा में कीलों से जुड़ना तीनों का तात्पर्य एक ही है।

भाषा विज्ञान में दो शब्द आते हैं—उत्कर्ष और अपकर्ष। अंतर्मुखता शब्द का प्रयोग जीवन में स्पष्ट भूमिका के लिए जरूरी है; क्योंकि मानव विज्ञान की अवधारणा और परिभाषा के कारण आज उसका अपकर्ष हो रहा है। वर्तमान समय में जो भीरु, पलायनवादी और आत्मकेंद्रित होता है, उसे अंतर्मुखी कहा जाता है। कुछ लोगों के अनुसार यह एक विशेष प्रकार की मानस व्याधि का रूप है, जिसे व्यक्तित्व का अशुद्ध और खंडित स्वरूप समझा जाता है।

अनेक व्यक्ति समाज में समय-समय पर मिल जाते हैं, जो कई प्रकार के मनोरोगों से ग्रसित हैं। वे अपने कर्त्तव्य और दायित्व के प्रति बिलकुल उदासीन होते हैं तथा परिवार और समाज के लिए भार बन जाते हैं। कई लोग आज उन्हें अंतर्मुखी मानते हैं, परंतु जीवनदर्शन में अंतर्मुखता के विकास पर जो बल दिया गया है, उसका तात्पर्य आधुनिक परिभाषा और व्याख्या से बिलकुल भिन्न है। इसके अनुसार जहाँ वृत्ति और सामुदायिक चेतना का विकास होता है, वह अंतर्मुखी है।

कर्त्तव्यनिष्ठ अध्यात्म और व्यवहार का गहरा संबंध है। सच्चा अंतर्मुखी वह है, जिसके व्यावहारिक जीवन में आध्यात्मिक आदर्शों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वह अपने कर्त्तव्य और दायित्व के प्रति सतत जागरूक होता है।

आज भक्ति और उपासनाप्रधान धर्म का बहुत विकास हो रहा है। उसके साथ कर्त्तव्यनिष्ठा और त्याग-भावना का आदर्श भी बढ़ना चाहिए। इसके अभाव में धर्म की तेजस्विता मंद हो जाती है तथा भक्ति भी आसक्ति में परिणत हो जाती है। कर्त्तव्यनिष्ठा के अभाव में भक्ति के सारे पक्ष अधूरे हैं।

अंतर्मुखी व्यक्ति का दृष्टिकोण विशाल होता है। वह स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को अधिक महत्त्व देता है। आज समाज में व्यक्तिवाद और स्वार्थवाद की भावना का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का अहित और अनिष्ट करने में लोगों को संकोच का अनुभव नहीं हो रहा है।

अंतर्मुखी व्यक्ति अपने हितों और स्वार्थों को बलिदान कर देता है, पर दूसरों के अहित और अनिष्ट का कभी विचार भी नहीं करता। हिंसा, असंयम और भ्रष्टाचार के विषैले बीज आज जो समाज में व्यापक रूप से अंकुरित हो रहे हैं, स्वार्थवाद की भावना उसका प्रमुख कारण है। इसलिए निस्स्वार्थवृत्ति का विकास होना आवश्यक है। जहाँ कर्त्तव्य की भावना गौण तथा अधिकार की भावना प्रमुख हो जाती है, वह समाज दुःखी और रोगी हो जाता है।

संस्कृत साहित्य में समाज और समज दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। मनुष्य का समूह समाज और पशुओं का समूह समज कहलाता है। समाज में एक मात्रा अधिक है, यह अहिंसा की मात्रा है, हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं। अहिंसा के अभाव में मनुष्यों का समूह भी पशुओं के समान होता है। अहिंसा और सामुदायिक चेतना का गहरा संबंध है। आध्यात्मिक चेतना का आदर्श स्वतः विकसित होता है।

भगवान महावीर ने कहा है—जिसके जीवन में सामुदायिक चेतना का विकास होता है और जो सबके सुख-दुःख के प्रति संवेदनशील और करुणाशील होता है, वही सच्चा ज्ञानी है। जो सामुदायिक चेतना से संपन्न होते हैं वे भेद में भी अभेद, अनेकता में भी एकता तथा विषमता में भी समता से जीने में सफल हो सकते हैं। हमारे शरीर में अग्नि, पानी, वायु आदि विरोधी तत्त्वों का समावेश है और जब तक इनमें समन्वय और संतुलन है, तब तक हम स्वस्थ हैं। विविधता और अनेकता सृष्टि के अटल नियम हैं। हमें मनुष्य, अन्य प्राणी तथा पदार्थ जगत् के अस्तित्व का सम्मान करते हुए समन्वयप्रधान दृष्टि का विकास करना चाहिए। संतुलन एवं सामंजस्य का सुनियोजन करना चाहिए—इससे हमारा व्यक्तित्व विकसित होता है। ❑

गुजरात के बोरसद क्षेत्र में डाकुओं का अत्यधिक आतंक था और उनसे रक्षा करने में पुलिस भी स्वयं को अशक्त अनुभव करती थी। त्रस्त होकर क्षेत्रवासियों ने सरदार पटेल तक अपनी फरियाद पहुँचाई। सरदार पटेल ने पुलिसवालों व गाँववालों को बुलाकर कहा—"आप दोनों मिल जाएँ तो आपकी शक्ति डाकुओं से पाँच गुना अधिक हो जाएगी। शक्ति संगठन में है। गाँव के सभी समर्थ पुरुष पुलिसवालों के साथ दल बनाकर गाँव में पहरा दें और आक्रमण होने पर भागने के बजाय डटकर मुकाबला करें।" फिर कभी उनके गाँव पर डाकुओं का हमला नहीं हुआ। जो अपनी रक्षा में समर्थ हो, उसे किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं होती।

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—4

इंद्रिय संयम

ब्रह्मचर्य पर वे बहुत जोर देते थे और कहते थे लोग कितने मूर्ख हैं कि शरीर और मन की शक्ति का स्रोत—ओजस् और ब्रह्मवर्चस् घृणित जैसी क्षणिक उत्तेजना में नष्ट करते रहते हैं और पीछे खोखले होकर दुर्बलता एवं रुग्णता का अभिशाप भोगते हैं।

दस इंद्रियों में जीभ और जननेंद्रिय यह दो ही प्रधान हैं, जिसने इन दोनों पर नियंत्रण करने योग्य संयम-मनोबल जुटा लिया समझना चाहिए कि उसने अपने आप को अस्वस्थता के अभिशाप से सदा के लिए मुक्त कर लिया।

उनके इस प्रतिपादन को चुनौती इसलिए नहीं दी जा सकती कि उन्होंने कहा ही नहीं, करके भी दिखाया। आज की व्यापक दुर्बलता और अस्वस्थता के निवारण में, अध्यात्मवाद का यह सरल-सा प्रयोग कितना सफल सिद्ध हो सकता है, इसे यदि समझा जा सके तो तरसा-तरसाकर मारने वाली इस शारीरिक दुर्गति-दुर्दशा से हम सहज ही छुटकारा पा सकते हैं।

न जाने गुरुदेव का यह संदेश मार्गदर्शन समझने और अपनाने में लोग समर्थ होंगे भी या नहीं। जो हो उन्होंने एक प्रत्यक्ष प्रयोग करके दिखाया कि सात्त्विक, सरल और संयमी जीवन निर्धनता के वातावरण में भी कुछ जटिल प्रारब्ध भोग अपवादों को छोड़कर सुदृढ आरोग्य का लाभ प्राप्त करना संभव हो सकता है। मस्तिष्क में मूढ़ता, उत्तेजना, चिंता, आशंका, अविश्वास, निराशा, भीरुता, अस्थिरता, अस्त-व्यस्तता, दीर्घसूत्रता, अदूरदर्शिता, अधीरता जैसी विकृतियाँ उत्पन्न करके ही हम बुद्धि संस्थान को स्वयं अशांत और उद्विग्न स्थिति में ले जाकर पटक देते हैं।

कुछेक अपवादों को छोड़कर साधारणतया सबकी मनःस्थिति इस योग्य होती है कि यदि उसे उचित दिग्दर्शन प्राप्त होता रहे तो हर व्यक्ति बुद्धिमान बन सकता है और उस आंतरिक अशांति से बच सकता है, जो न केवल अपने लिए ही वरन संबंधित अन्य कुटुंबी सहयोगियों के लिए भी खिन्नता एवं असंतोष का कारण बनती है।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

—ऋग्वेद *(5/51/15)*

अर्थात हे मनुष्यो! सूर्य-चंद्रमा जिस प्रकार नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हें भी न्याय का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

मानसिक रोगों की तरह कितनी ही सनकें, कितनी ही बुरी आदतें सिर पर सवार हो जाती हैं और उनके चंगुल में फँसा हुआ व्यक्ति एक प्रकार का अभिशप्त, असफल और नीरस जीवन ही जीता रहता है। समझा यह जाता है कि यह सब परिस्थितियों के कारण हो गया या दूसरे लोग इस दशा में धकेल देने के दोषी हैं। इस भ्रम में पड़े हुए लोग अपनी अशांत मनोदशा का कारण बाहर तलाश करते हुए मृगतृष्णा में भटकते रहते हैं। न उन्हें समाधान मिलता है, न छुटकारा। ❑

पुरुषार्थ चतुष्टय—भारतीय संस्कृति में जीवन के चार आधार

मनुष्य विधाता की सर्वोत्कृष्ट रचना है, उससे श्रेष्ठतर जीवनयापन की अपेक्षा की जाती है, जिससे कि मानव जीवन का उद्देश्य पूरा हो सके। मानव इस धरती पर क्यों आया, उसके जन्म का उद्देश्य क्या है, जीवन का लक्ष्य क्या है और इसको प्राप्त करने के साधन क्या हैं—जीवन के इन यक्षप्रश्नों के उत्तर ऋषियों ने पुरुषार्थ चतुष्टय के रूप में दिए हैं, जो जीवन का स्पष्ट दिशा बोध करते हैं व इसमें निहित प्रश्नों के समाधान भी देते हैं।

अतिशयोक्ति न होगी, यदि यह कहें कि भारतीय संस्कृति का भव्य भवन पुरुषार्थ चतुष्टय के चार स्तंभों पर खड़ा है। पुरुषार्थ चतुष्टय एक तरह से आचारशास्त्र हैं, कर्त्तव्यशास्त्र हैं, जीवन जीने की कला के साधन हैं। ये सत्कार्य के लिए अंतर्दृष्टि देते हैं, जीवन को अनुशासित करते हैं, ऊपर उठने की प्रेरणा देते हैं और आत्मा के परिष्कार के साथ जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति संभव बनाते हैं।

पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म को प्रथम स्थान दिया गया है और अर्थ तथा काम को दूसरा एवं तीसरा स्थान मिला है। इसका आशय यही है कि अर्थ और काम की प्रक्रिया धर्म पर आधारित हो। हम जो अर्थ का उपार्जन करें या काम का उपभोग करें, वे सब धर्ममय हों।

भारतीय संस्कृति में यह धारणा है कि मानवीय जीवन का उद्देश्य मात्र अर्थ का उपार्जन व कामोपभोग नहीं हो सकता। धर्म के आधार पर एक उच्चतर जीवन इसका मौलिक प्रतिपादन है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों में सुख-शांति व्याप्त हो सके।

धर्म सदाचरण, कर्त्तव्यपरायणता, मानव मूल्यों का द्योतक है। धर्म—स्वअनुशासित, नैतिकतापूर्ण लोकयात्रा पूरी करने, भली भाँति जीवन व्यतीत करने संबंधी नियमों का सनातन स्रोत है। धर्म के अभाव में अर्थ और काम अवनति, अशांति एवं पतन के कारण बन जाते हैं। अत: धर्म उन नियमों का नाम है, जिनका पालन करते हुए हमें काम व अर्थ का उपभोग करना है एवं आत्मिक सुख और शांति का मार्ग प्रशस्त करना है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार धर्म अभ्युदय और नि:श्रेयस देता है अर्थात लौकिक और पारलौकिक, दोनों पक्षों को साधता है। अभ्युदय जहाँ लौकिक सुख, समृद्धि और संपन्नता है, तो नि:श्रेयस आत्मिक शांति और मोक्ष।

ऋषि पराशर महाभारत के शांतिपर्व में कहते हैं कि धर्म का ही विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाए, जो इस लोक में ही नहीं, इहलोक में भी कल्याणकारी होता है। इससे बढ़कर श्रेय का दूसरा कोई साधन नहीं है।

धर्म का अर्थ धारणा से भी है, जो सबको धारण करता है। धर्म इस सृष्टि को, इस जीवन को धारण किए हुए है। इस रूप में धर्म का अभिप्राय श्रेष्ठ गुणों से भी है, जिन्हें धारण किया जाता है। महर्षि मनु ने धर्म के दस लक्षणों के रूप में इन्हीं सद्गुणों का वर्णन किया है। इस रूप में धर्म का आशय उपासनापद्धति से अधिक श्रेष्ठ आचरण से है।

जब अर्थ और काम धर्ममूलक होते हैं, जब व्यक्ति का जीवन सुखी और समाज सुव्यवस्थित रहता है, तभी मोक्ष फलित होता है अन्यथा व्यक्ति इहलोक एवं परलोक; दोनों में दुःख भोगता है तथा समाज में अशांति और अव्यवस्था व्याप्त रहती है।

अर्थ का अभिप्राय धन, संपत्ति व साधन-वैभव से है, जिनके आधार पर मानवीय जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, परिवार का पालन-पोषण होता है, समाज के विकास कार्य आगे बढ़ते हैं। यह आवश्यक है कि धन का अर्जन न्याय, नैतिकता तथा सत्य पर आधारित हो, जिसमें साधन की शुचिता का विशेष ध्यान रखा जाए।

अथर्ववेद में ऋषि कहते हैं, जैसे कोई अपनी गोशाला में आई हुई गौओं की जाँच करता है कि ये मेरी हैं या नहीं, उसी प्रकार मैं अपने पास आई हुई लक्ष्मी का निरीक्षण करता हूँ। जो पुण्य की लक्ष्मी है, उसे मैं अपने पास रहने देता हूँ, किंतु जो पापयुक्त है, उसे हटा देता हूँ।

ऋग्वेद में ऋषि कहते हैं कि मैं अन्य की कमाई न खाऊँ अर्थात यह अनुचित ढंग से अर्जित न हो। हे इंद्र, हमें श्रेष्ठ धन दो। हमें निष्ठा व ईमानदारी द्वारा अर्जित श्रेष्ठ व शुद्ध धन दो। अथर्ववेद के अनुसार पुण्य से अर्जित किया गया धन ही मेरे घर की शोभा बढ़ाए।

महाभारत शांतिपर्व में सच्चे धन पर चर्चा करते हुए कहा गया है कि धर्म का पालन करते हुए जो धन अर्जित होता है, वही सच्चा धन है। जो अधर्म से प्राप्त होता है, वह धन तो धिक्कार करने योग्य है। संसार में धन की इच्छा से शाश्वत धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।

महान नीतिज्ञ चाणक्य वर्जित धन के संबंध में प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि जो धन दूसरों को पीड़ा या हानि पहुँचाकर, धर्म का उल्लंघन करके और शत्रु के सामने झुकने से प्राप्त होता है, वह धन मुझे नहीं चाहिए। अन्याय से यदि किसी का तिनका भी ले लिया जाए तो वह दुःखदायी होता है।

इसीलिए चाणक्य ने कहा है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

अर्थात जो पराई स्त्री को माता के समान, पराए धन को काठ के समान और समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है, वही देखता है। उपनिषदों में—**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः** अर्थात त्यागपूर्ण भोग को जीवन का आदर्श कहा गया है।

काम सृष्टि का मूल कारण है, मनुष्य की स्वाभाविक एवं जन्मजात प्रवृत्ति है। संतानोत्पति, मानव जाति की परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए काम आवश्यक है। इस रूप में यह एक प्राकृतिक एवं नैसर्गिक कामना है।

शास्त्रों में एक सीमा मर्यादा में रहकर कामसेवन की बात कही है तथा इसकी अति की वर्जना प्रतिपादित की गई है। अनियंत्रित या अति विषयासक्ति बल एवं बुद्धि का नाश करती है। विषय-वासना में फँसे व्यक्ति की अनिर्वचनीय हानि होती है, फिर भोग कभी तृप्त नहीं होते।

भर्तृहरि ने कहा है—**भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः** अर्थात भोगों को भोगने से मनुष्य तृप्त नहीं होता, अपितु स्वयं जर्जरित हो जाता है। मनु महाराज के शब्दों में भोगने से इच्छाओं की तृप्ति कभी नहीं हो पाती, वरन घृत से अग्नि के तीव्र होने के समान ही इच्छा बढ़ती चली जाती है। भगवान श्रीकृष्ण ने काम को बहुत खाने वाला महापापी तक कहा है। इसके वशीभूत जीवन की दुःखद परिणति चारित्रिक पतन एवं कलंकित जीवन के रूप में होती है।

महाभारत में स्पष्ट निर्देश है कि अपनी इंद्रियों को वश में न रखना विपत्ति का मार्ग है और इनको

अधीन रखना संपत्ति का मार्ग है। धर्मयुक्त काम संयम का मार्ग है, जो स्वास्थ्य ठीक रखता है, मन को निर्मल तथा चित्त को शांत करता है। संयमित, मर्यादित, सदाचारी जीवन ही मनुष्य का आदर्श है। धर्मयुक्त काम ही मोक्ष का द्वार है।

मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय में चौथे स्थान पर आता है। यह जीवन का उच्चतम उद्देश्य, परम साध्य है। मोक्ष जीवन की यात्रा का मुख्य गंतव्य, अंतिम लक्ष्य है। मोक्ष जन्म-मरण के बंधन, संसार चक्र—मृत्यु के अंतहीन गतिशील चक्र से मुक्त या पार होना है। न्यायदर्शन में दु:ख से छूटने का नाम ही मोक्ष कहा गया है। यह मानव जीवन की परम उपलब्धि है। भारतीय परंपरा के सभी दर्शन इसका प्रतिपादन करते हैं। गृहस्थ में रहते हुए भी सात्त्विक, संयमित एवं सदाचारी जीवन जीते हुए इसे प्राप्त किया जा सकता है। अर्थ एवं काम का धर्मयुक्त आचरण इसका राजमार्ग है। ❑

भवन में मकड़ियों के जाले, शिशुओं का शौच व पशुओं का गोबर आदि देख श्रुतिधर को घर में अमंगल दिखाई दिया और घर छोड़कर चल दिया। समीप के गाँव में जाने पर वहाँ भी इसी तरह का दृश्य देखने पर वन की ओर प्रस्थान कर गया। रात्रि वन में शांतिपूर्वक व्यतीत करने पर प्रात: उसने पाया कि वहाँ जंगली जीवों द्वारा आखेट किए गए पशुओं की हड्डियाँ पड़ी हुई हैं।

फलत: वहाँ भी उसका मन नहीं रुचा और आगे बढ़ने पर उसे एक स्वच्छ सलिला नदी दिखाई दी। यहाँ उसने रहने का मन बनाया था कि थोड़ी ही देर में एक शव बहकर आता हुआ दिखा। यह दृश्य देखने पर श्रुतिधर का हृदय घृणा से भर उठा और उसे सर्वत्र सृष्टि में अमंगल-ही-अमंगल दिखाई दे रहा था। अब कहाँ जाएँ जब सर्वत्र अमंगल ही है, ऐसा सोचते-सोचते उसे लगा कि यह सृष्टि जब रहने लायक ही नहीं है तो यह जीवन ही समाप्त कर दिया जाए।

ऐसा निर्णय लेकर वह अपना जीवन समाप्त ही करने जा रहा था कि उधर से गुजर रहे एक भद्र पुरुष ने उसे ऐसा करने से रोककर वजह पूछी। श्रुतिधर ने सारी आपबीती बता दी। भद्रपुरुष ने कहा—"हे युवक! तुम्हारे मरने से तो अमंगल ही होगा, क्या तुम्हें उससे शांति मिलेगी ? वस्तुत: यह सृष्टि अमंगल की अपेक्षा मंगलमय अधिक है, केवल नजरिए को परिवर्तित करने की जरूरत है। घर में रहकर सुयोग्य नागरिकों का निर्माण, गाँव में शिक्षा व संस्कृति का विस्तार, वन में उपासना की शांति और जल से प्रदूषण का प्रच्छालन। प्रकृति की प्रेरणा यही तो है कि सृष्टि में जो मंगल है, उसका अभिसिंचन, परिवर्द्धन व विस्तार हो और जो अमंगल है, उसका शुचि-संस्कार। यदि तुम इसमें जुट पड़ो तो अशांति का प्रश्न ही शेष न रहे।"

श्रुतिधर को यथार्थ का बोध हुआ। वह घर लौटकर मंगलमयी साधना में रत हो गया।

चेतना की शिखर यात्रा–244

प्रज्ञावतार के लीला केंद्र

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1979 में गायत्री परिवार के रजत जयंती वर्ष के दौरान स्थानीय संगठनों, शाखाओं में चल रही गायत्री परिवार की गतिविधियों की पूज्यवर ने सराहना की। ब्रह्मवर्चस आरण्यक के अंतर्गत गायत्री शक्तिपीठ, ब्रह्म विद्यालय और शोध संस्थान के रूप में हुई केंद्रीय उपलब्धि को भी उन्होंने उद्घाटित कर अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। जनकल्याण के प्रयोजन को पूर्ण करने के उद्देश्य से पूज्य गुरुदेव ने शक्तिपीठों की स्थापना की न केवल सार्वजनिक घोषणा की, वरन विशिष्ट स्तर के साधकों को भी अपनी अंतर्दृष्टि से वर्षों पूर्व चयनित कर लिया था और जिन्हें वे अपना परोक्ष संरक्षण एवं समुचित मार्गदर्शन भी प्रदान कर उन्हें आध्यात्मिक शिखर तक पहुँचा रहे थे। विशेष प्रयोजनों हेतु तैयार हुए साधकों में धर्मकाय मुनि नाम के एक गायत्रीसाधक भी थे। जिन्होंने पूज्य गुरुदेव के प्रत्यक्ष निर्देशन में अपने जीवन का पूर्वार्द्ध मिशन के प्रचार-प्रसार में लगाया था और आज अपने गुरु के इशारे पर साधनात्मक पुरुषार्थ द्वारा अर्जित शक्ति को 24 शक्तिपीठों में से एक की सेवा हेतु लगाने के लिए नियुक्त हुए। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.....

शिष्य समर्पित

सन् 1970 में उन्होंने सत्यानंद सरस्वती (पूर्व आश्रम का नाम सद्धर्म प्रकाश) को संन्यासी बनाया और अमरकंटक का आश्रम छोड़कर ऋषिकेश चले आए। उन्होंने चाहा था कि सत्यानंद सरस्वती अमरकंटक आश्रम का दायित्व सँभालें और वे स्वयं ऋषिकेश चले जाएँ। अमरकंटक में स्वामी कृष्णतीर्थ का आश्रम कुछ खास नहीं था। नर्मदा के कनारे यों ही डेढ़-दो सौ गज जमीन घेरी हुई थी। चारों तरफ बाड़ लगा दी थी और एक कुटिया बना ली थी। सद्धर्म प्रकाश को संन्यास दीक्षा देने के बाद कुटिया को थोड़ा और विस्तार दे दिया, बाकी जगह फूल-पत्तियाँ और पौधे लगे हुए थे।

उन्होंने अपने शिष्य से इस आश्रम या कुटिया को सँभालने के लिए कहा तो सत्यानंद ने हठ किया कि आपके साथ ही चलना है। स्वामी कृष्णतीर्थ यों सामान्य साधु थे, उनके शिष्यों और अनुयायियों की संख्या नगण्य थी, लेकिन उनकी वीतरागता आस-पास के गाँवों में प्रसिद्ध थी। शायद यही कारण था कि उन्हें किसी वस्तु का अभाव नहीं रहा। लोकश्रद्धा से लेकर भजन-पूजन और निर्वाह की व्यवस्थाएँ सदा उपलब्ध रहीं। गुरु जब आश्रम या कुटी छोड़कर जाने की तैयारी करने लगे तो शिष्य ने भी अपनी गठरी सँभाल ली और दोनों ऋषिकेश रवाना हो गए।

यह सन् 1972 के आस-पास की बात है। गुरुदेव तब शांतिकुंज आ गए थे, लेकिन शिविर आदि शुरू नहीं हुए थे। प्राण प्रत्यावर्तन सत्रों की तैयारियाँ चल रही थीं। तिथियाँ घोषित हो गई थीं, लेकिन सत्र अभी आरंभ नहीं हुए थे। स्वामी कृष्णतीर्थ और सत्यानंद सरस्वती हरिद्वार पहुँचकर ऋषिकेश के लिए रवाना हुए तो स्वामी जी को शांतिकुंज और गुरुदेव की याद आ गई। उन्होंने ऋषिकेश जाते हुए गुरुदेव से मिलने का निश्चय किया और रास्ते में ही उतर गए। गुरु-शिष्य दोनों गुरुदेव से मिले। इस भेंट

के दौरान ही गुरुदेव ने स्वामी कृष्णतीर्थ से कहा कि सत्यानंद को हमें दे दो। वह रहेगा आपके साथ ही लेकिन जप-तप योग सब गायत्री माता के लिए करेगा।

स्वामी कृष्णतीर्थ ने सत्यानंद की ओर देखा। उसकी आँखों में निरीह असमंजस था। जैसे कि गुरु का साथ तो नहीं छूट जाएगा, कहीं गुरुजी कह न दें कि आप (गुरुदेव) जैसा चाहें, बच्चा आपका ही है। गुरुदेव ने इस असमंजस को पढ़ा और दूर करते हुए कहा—''हम अपने पास नहीं रखेंगे। अपने गुरु की सेवा ही करना। स्वामी जी भी हमसे अलग थोड़े ही हैं।''

गुरुदेव ने यह बात बहुत सहज भाव से कही थी, लेकिन स्वामी सत्यानंद ने अपने आप को आश्वस्त अनुभव किया। फिर उन्होंने अपने गुरु से भी हठ नहीं किया और ऐसी मुद्रा बनाई जैसे कह रहे हों कि स्वीकार है। स्वामी कृष्णतीर्थ ने अपने शिष्य की मनोदशा देखकर कहा—''आप जबसे चाहें सत्यानंद को अपनी शरण में ले सकते हैं गुरुदेव! हम तो रामनाम के सिवा कुछ नहीं जानते। आपके सान्निध्य में यह कुछ सीख जाएगा तो लोगों का भला कर सकेगा।''

उसके बाद स्वामी सत्यानंद एक बार तो अपने गुरु के साथ ऋषिकेश चले गए। तीन-चार दिन बाद वे वापस शांतिकुंज आए और यहाँ गुरुदेव के पास दो-ढाई घंटा रुककर फिर वापस चले गए। दोबारा फिर वे प्राण प्रत्यावर्तन शिविर में ही आए थे। इस बीच उनके गुरु स्वामी कृष्णतीर्थ ब्रह्मलीन हो गए और सत्यानंद ने ऋषिकेश भी छोड़ दिया। किसी अज्ञात प्रदेश में चले गए। सात-आठ साल बाद, शक्तिपीठों की स्थापना का अभियान शुरू हुआ तो वे फिर शांतिकुंज में दिखाई दिए। इस बीच वे कहाँ रहे, क्या करते रहे, किसी को नहीं पता। न किसी ने पूछा और न ही बताया।

शक्तिपीठों की योजना अवतरित हुई तो उनका और मुनि धर्मकाय का आमना-सामना हुआ। दोनों ने पिछले छह-सात वर्ष के अपने अनुभव बाँटे। योग मार्ग या आध्यात्मिक साधनाओं के अपने अनुभव बाँटने के लिए आमतौर पर मनाही है, लेकिन दोनों को लगा कि वे अपने अनुभव बाँट नहीं रहे, बल्कि स्मरण कर रहे हैं।

मुनि धर्मकाय और स्वामी सत्यानंद की तरह दूसरे साधकों ने भी भारत के विभिन्न तीर्थस्थानों की, सिद्धक्षेत्रों की यात्राएँ कीं। उन स्थानों के अनुभव संचित किए। उनमें तीर्थों की वर्तमान स्थिति भी उजागर होती थी। शक्तिपीठों की संख्या यों इक्यावन है। इससे कम और ज्यादा का उल्लेख भी मिलता है। उन स्थानों की गणना भी कराई जाती है, लेकिन ज्यादातर लोग इक्यावन के पक्ष में ही हैं।

इनमें भी चार प्रधान या आदि शक्तिपीठ कहे जाते हैं। एक असम में गुवाहाटी के पास कामाक्षी शक्तिपीठ; दूसरा पश्चिम बंगाल में कोलकाता के पास दक्षिण कालिका; तीसरा और चौथा ओडिशा में क्रमशः जगन्नाथपुरी के पास और बरहामपुर में। यों इनमें कामाक्षी या कामाख्या; उत्तर प्रदेश में विंध्येश्वरी; उज्जैन में गढ़कालिका; प्रयाग में अलोपी; केरल में कन्याकुमारी; वाराणसी में विशालाक्षी; गुजरात में अंबाजी आदि शक्तिपीठों की विशेष मान्यता है।

इन स्थानों पर हजारों लोग जाते रहते हैं। श्रद्धा और संवेदना के अनुसार यात्रियों को वहाँ अनुभूतियाँ भी होती हैं। वे अनुभव साधकों की अपनी आंतरिक स्थिति के अनुसार हैं। गुरुदेव ने कहा था कि तीर्थ या शक्तिपीठों का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि आत्मिक दृष्टि से अत्यंत सामान्य व्यक्ति को भी उत्कर्ष की प्रेरणा मिले। उसे प्रतीत हो कि जैसे कोई हाथ पकड़कर ऊपर उठा रहा है।

कामाख्या देवी के संबंध में प्रसिद्ध है कि वहाँ तांत्रिक उपासक हर समय अपनी साधना में लीन रहते हैं और दिव्य शक्तियाँ अर्जित करते हैं। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार सती का शव कंधे पर रखकर शिव विक्षिप्तों की तरह चारों दिशाओं में भाग रहे थे। यह अंतर्कथा बहुतों को मालूम है कि सती के पिताजी प्रजापति दक्ष ने अपने यहाँ बृहस्पति सव नामक यज्ञ का आयोजन किया था। इसमें सभी देवताओं को बुलाया था, किंतु शिव को नहीं बुलाया।

पिता के यहाँ यज्ञ का समाचार पाकर सती ने जाने की तैयारी की। शिव ने समझाया कि वहाँ हम लोगों को बुलाया नहीं गया है, इसलिए नहीं जाना चाहिए, लेकिन सती का कहना था कि पिता के यहाँ आयोजन हो रहा है। उसमें आमंत्रित किया जाए अथवा नहीं किया जाए, अवश्य जाना चाहिए। शिव जानते थे कि प्रजापति दक्ष उनसे वैर-विरोध मानते हैं, इसलिए जान-बूझकर आमंत्रित नहीं किया है।

यज्ञ-आयोजनों में शिव को देवाधिपति महादेव होने के कारण अनिवार्य रूप से आमंत्रित किया जाता है। यह आमंत्रण स्वजन संबंधी या पुत्री और जामाता का रिश्ता होने के कारण ही नहीं, देवसत्ताओं में वरिष्ठ और अधीश्वर की महाशक्ति महादेव होने के नाते भी दिया जाना चाहिए। ऋषियों और पुरोहितों के समझाने पर भी प्रजापति दक्ष ने महादेव की अवमानना की और उन्हें अनाहूत ही छोड़ दिया।

शिव का विक्षोभ

पिता के बिना बुलाए भी सती यज्ञ में गईं। वहाँ देखा कि यज्ञ में शिव का भाग नहीं रखा गया है और पिता दक्ष देवताओं और ऋषियों के सामने उनकी निंदा भी कर रहे हैं। सती अपने पति की निंदा सहन नहीं कर पाईं। वह इतनी दुःखी और कुपित हुईं कि यज्ञशाला में ही अपना शरीर त्याग दिया।

सती के शरीर छोड़ देने से भगवान शिव भी कुपित हुए। दुःख और क्रोध से विह्वल होकर सती की निष्प्राण काया को कंधे पर उठाकर वे उन्मत्त भाव से नृत्य करते हुए तीनों लोकों में घूमने लगे। इससे चारों ओर विनाश होने लगा। शिव का उन्मत्त भाव शांत करने के लिए भगवान विष्णु ने अपने चक्र से सती के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

कहते हैं इक्यावन स्थानों पर उनके शरीर के अंग और आभूषण गिरे। प्रत्येक स्थान पर एक-एक शक्ति और एक-एक भैरव अर्थात शक्ति के कल्याणकारी स्वरूप की स्थापना हुई। इन स्थानों को महापीठ कहा जाता है।

इक्यावन शक्तिपीठों में अब कम ही स्थान हैं, जहाँ साधना-उपासना के क्षेत्र में विशेष गतिविधियाँ चलती हों। ज्यादातर स्थानों पर सामान्य मंदिरों की तरह पूजा, आरती, दर्शन जैसी गतिविधियाँ चलती हैं। उन कार्यक्रमों या गतिविधियों से श्रद्धालु जनों को खास लाभ नहीं होता।

गुरुदेव ने शक्तिपीठों का रहस्य समझाते हुए कहा था कि प्रजापति दक्ष का यज्ञ विध्वंस और शिव द्वारा सती के शव को कंधे पर लेकर पृथ्वी पर विचरण और शक्ति के अंगों के कट-कटकर गिरने तथा उन-उन स्थानों पर शक्तिपीठों की स्थापना का वर्णन जिस रूप में मिलता है, वह व्यंजनात्मक ही है और शायद संभव भी नहीं है। इस रूपक से एक आध्यात्मिक सत्य को उद्घाटित किया गया है।

शिव अर्थात कल्याण के अधिष्ठाता देव और सती अर्थात उस सत्ता को व्यक्त करने वाली शक्ति। समाज में जब कुछ चतुर लोग जो प्रतिभाशाली हैं और प्रभाव भी रखते हैं, शिव और शक्ति की अवमानना करने लगते हैं तो संतुलन डगमगाने लगता है। अवमानना से शक्ति निष्प्राण हो जाती है

और फिर उससे कुपित हुए प्राण, स्पंदन, प्रवाह उन्मत्त होकर विनाश की भूमिका रचने लगते हैं।

कल्याण अथवा शुभ जब शक्ति से रहित हो जाता है तो अस्त-व्यस्तता और अराजकता उत्पन्न होती है। उसका निवारण करने के लिए संतुलन और व्यवस्था की अधिष्ठात्री सत्ता सक्रिय होती है। उसी सत्ता के हस्तक्षेप से स्थितियाँ अनुकूल होती हैं।

शक्तिपीठों की स्थापना-अवतरण का यह काव्यात्मक अर्थ है। आध्यात्मिक रहस्य इसके आगे बहुत गूढ़ और अर्थपूर्ण हैं। उसे उद्घाटित करने के लिए साधना-उपासना के क्षेत्र में उतरना पड़ता है और ऐसी स्थिति अर्जित करनी पड़ती है कि न केवल रहस्य उद्घाटित हों, बल्कि उन संस्थानों का गौरव भी स्थापित हो। उस गौरव का निर्वाह भी हो।

शास्त्रों में अथवा परंपरा में जिन शक्तिपीठों का उल्लेख आया है, वे साधना-उपासना के सामान्य केंद्र नहीं हैं। उन्हें सिद्ध महात्माओं ने अपनी उपासना से गरमाया है। वहाँ तप-अनुष्ठान किए और आध्यात्मिक ऊर्जा के ऐसे प्रवाह उत्पन्न किए कि वहाँ जाने वालों की आत्मिक स्थिति स्वाभाविक ही उन्नत होती चले।

(क्रमशः)

चंद्रमा की दो संतानें थीं। एक पुत्र—पवन और दूसरी पुत्री—आँधी। एक दिन एक छोटी-सी घटना पर पुत्री आँधी को यह लगा कि मेरे पिताजी सांसारिक पिताओं की तरह पुत्र व पुत्री में भेद करते हैं। चंद्रमा अपनी पुत्री की व्यथा को ताड़ गए। उन्होंने पुत्री को आत्मनिरीक्षण का एक अवसर देने का निश्चय किया। चंद्रमा ने आँधी और पवन, दोनों को अपने पास बुलाकर कहा—"तुम दोनों स्वर्गलोक में पारिजात वृक्ष की सात परिक्रमा करके आओ।"

पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके दोनों चल दिए। आँधी सिर पर पैर रखकर दौड़ी। वह धूल, पत्ते व कूड़ा-करकट उड़ाती हुई स्वर्गलोक जा पहुँची और पारिजात नामक देववृक्ष की परिक्रमा करके वापस लौट पड़ी। आँधी समझ रही थी कि मैं पिता की आज्ञा का पालन करके जल्दी लौटी हूँ, अतः वे मुझे अवश्य ही पुरस्कृत करेंगे। आँधी के लौटने के थोड़ी देर बाद पवन लौटा, पर उसके आगमन पर सारा वातावरण पारिजात की सुगंध से महक उठा।

पिता चंद्रमा ने आँधी को समझाते हुए कहा—"पुत्री! निश्चित रूप से तुम्हारी गति तीव्र है, पर प्रश्न मात्र गति की तीव्रता का नहीं, सद्गुणों के विस्तार का भी है। गति की तीव्रता में तुम पारिजात के निकट भी गईं, परंतु उसकी सुगंध साथ न ला पाईं और खाली हाथ लौट आईं। इसलिए जीवन में विकास का आधार मात्र तीव्रता को नहीं, वरन सुगंधभरे संतुलन को मानना।"

नववर्ष की मंगलकामना

आदिशक्ति माँ गायत्री परमपूज्य गुरुदेव परमवंदनीया माताजी के दिव्य संरक्षण में हम गौरवशाली उज्ज्वल भविष्य की ओर गरिमापूर्ण चिंतन व कर्म करते हुए आगे बढ़ते रहें, सभी के लिए नववर्ष मंगलमय भविष्य, सुख, शांति, सौभाग्यपूर्ण जीवन लेकर आए।

अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा

युग निर्माण योजना
मथुरा

शांतिकुंज
हरिद्वार

प्रमुख पर्व-त्योहार- 2023

12	जनवरी	राष्ट्रीय युवा दिवस
14	जनवरी	मकर संक्रांति
23	जनवरी	नेताजी सुभाष चंद्र बोस जयंती
26	जनवरी	गणतंत्र दिवस/ वसंत पंचमी
30	जनवरी	शहीद दिवस
05	फरवरी	संत रविदास जयंती/ माघी पूर्णिमा
18	फरवरी	महाशिवरात्रि
21	फरवरी	रामकृष्ण परमहंस जयंती/ फुलरिया दूज
06	मार्च	होलिका दहन
07	मार्च	होली, धूलिवंदन
22	मार्च	नवरात्रारंभ/ संवत्सरारंभ
24	मार्च	रमजान शुरू*
30	मार्च	श्रीराम नवमी
04	अप्रैल	महावीर स्वामी जयंती
06	अप्रैल	हनुमज्जयंती
14	अप्रैल	आंबेडकर जयंती
22	अप्रैल	परशुराम जयंती/ अक्षय तृतीया/ ईदुलफित्र*
05	मई	बुद्ध पूर्णिमा
07	मई	रवींद्र नाथ टैगोर जयंती
19	मई	वट सावित्री
30	मई	गायत्री जयंती/ गंगा दशहरा/ महाप्रयाण दिवस पूज्य गुरुदेव
31	मई	निर्जला एकादशी (भीमसेनी एकादशी)
04	जून	कबीर जयंती/ ज्येष्ठ पूर्णिमा
29	जून	देवशयनी एकादशी/ ईदुज्जुहा*
03	जुलाई	गुरु पूर्णिमा (व्यास पूर्णिमा)
20	जुलाई	मुहर्रम 1*
15	अगस्त	स्वतंत्रता दिवस
31	अगस्त	रक्षाबंधन
06	सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'स्मा'.
07	सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'वै'.
17	सितंबर	विश्वकर्मा जयंती
19	सितंबर	श्री गणेश चतुर्थी
20	सितंबर	ऋषि पंचमी
21	सितंबर	बलदेव छठ (देव छठ)
23	सितंबर	राधाष्टमी
26	सितंबर	वामन जयंती
29	सितंबर	महालयारंभ/ महाप्रयाण दिवस वंदनीया माताजी
02	अक्टूबर	गांधी/ शास्त्री जयंती
03	अक्टूबर	माता भगवती देवी शर्मा जयंती
12	अक्टूबर	पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जयंती
14	अक्टूबर	पितृमोक्ष अमावस्या
15	अक्टूबर	शारदीय नवरात्रारंभ
24	अक्टूबर	विजयादशमी
28	अक्टूबर	शरद पूर्णिमा/ वाल्मीकि जयंती
01	नवंबर	करवा चौथ
10	नवंबर	धन्वंतरि जयंती/ धनतेरस
12	नवंबर	दीपावली
13	नवंबर	सोमवती अमावस्या/ अन्नकूट/ गोवर्धन पूजा
14	नवंबर	बालदिवस
15	नवंबर	भाईदूज/ यमद्वितीया
21	नवंबर	अक्षय नवमी/ कूष्मांड नवमी
23	नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी/ देवठान
27	नवंबर	गुरुनानक जयंती/ देव दीपावली
23	दिसंबर	गीता जयंती/ मोक्षदा एकादशी 'वै'.
25	दिसंबर	क्रिसमस
26	दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती

* चंद्रदर्शन के अनुसार परिवर्तनीय

मंगलवर्ष- 2023

जनवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
01	02	03	04	05	06	07
08	09	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

फरवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28				

मार्च

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30	31	

अप्रेल

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
30						01
02	03	04	05	06	07	08
09	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

मई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
	01	02	03	04	05	06
07	08	09	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

जून

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
				01	02	03
04	05	06	07	08	09	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	

जुलाई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
30	31					01
02	03	04	05	06	07	08
09	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

अगस्त

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
		01	02	03	04	05
06	07	08	09	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

सितंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
					01	02
03	04	05	06	07	08	09
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

अक्टूबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
01	02	03	04	05	06	07
08	09	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

नवंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
			01	02	03	04
05	06	07	08	09	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

दिसंबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
31					01	02
03	04	05	06	07	08	09
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ२ ऽअनु ।।

— यजु० 4/28

हम चरित्रवान हों—हम दुराचरण से सदैव दूर रहें। जीवनमुक्त तथा दीर्घायु पुरुषों से उत्तम आदर्श ग्रहण करें, सदाचारी बनें और उत्तम जीवन तथा पूर्ण आयु प्राप्त करें।

विज्ञान से अध्यात्म की ओर

अध्यात्म और विज्ञान एकदूसरे के परिपूरक हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते। इन दोनों के पारस्परिक अन्योन्याश्रित सहयोग पर ही इस धरती का भविष्य भी टिका है। अध्यात्म एक उच्चस्तरीय विज्ञान है। समस्त ब्रह्मांड में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो भौतिक एवं अध्यात्म दोनों ही विधाओं का सर्जक, पोषक एवं व्यवहारकर्त्ता है। मनुष्य अध्यात्म और विज्ञान के बीच की कड़ी है।

मनुष्य की देह के परे इंद्रियाँ, इंद्रियों के परे मन, मन के परे बुद्धि तथा बुद्धि के परे सूक्ष्मशरीर व आत्मा हैं। ये सभी अंग प्रत्येक कार्य, व्यवहार एवं गुण-दोष के आधार पर एकदूसरे से भिन्न होने पर भी परस्पर जुड़े होते हैं। शरीर व इंद्रियाँ मन और बुद्धि के अनुरूप भौतिक कार्यों में लगे रहते हैं। सूक्ष्मशरीर व आत्मा आध्यात्मिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। चेतना का परिष्कार ही अध्यात्म है।

अध्यात्म की कल्पना उस कामधेनु के रूप में की जाती है, जिसका दूध वेदरूपी ज्ञान-विज्ञान हैं। स्वाध्याय के माध्यम से इस ज्ञान-विज्ञानरूपी दुग्ध का सेवन किया जा सकता है। स्वाध्याय से ज्ञान एवं विवेक की जाग्रति होती है और ऊर्जा की प्राप्ति होती है। चूँकि सामान्य जन इस ज्ञानरूपी दुग्ध को पचाने में असमर्थ होते हैं, इसीलिए शास्त्रों और पुराणों को स्मृतियों के रूप में सहज एवं सरल बनाकर ग्राह्य बनाया गया।

कालांतर में जब लोगों में उनके प्रति अश्रद्धा जगने लगी तो मनीषियों ने उसे विज्ञान की कसौटी पर कसा। ऋषियों ने उपनिषद् के नाम से उन सिद्धांतों को दधि के रूप में संगृहीत किया। इस दधि का मंथन भगवान श्रीकृष्ण ने किया और गीता के रूप में समस्त संसार के समक्ष पेश किया।

अध्यात्म और विज्ञान के इस अद्भुत मिलन को सभी धर्म और संप्रदाय के लोगों ने सहज रूप में स्वीकार किया है। मानव मन और प्राण से ऊँची चेतना है। यह चेतना शुद्ध महान एवं दिव्य है तथा जो मानव की सामान्य मानसिक, प्राणिक प्रवृत्तियों से परे है, वह अध्यात्म कहलाता है।

आत्मा के भीतर उठती हिलोर जब निम्न भावों की क्षुद्रता से निकलकर किसी अदृश्य चेतना की ओर बढ़ती है—तब मनुष्य उस महत्तर चेतना के प्रति जागरूक होना प्रारंभ कर देता है। अध्यात्म में प्रविष्ट होने के लिए हृदय की पवित्रता आवश्यक है। इसके लिए आत्मा में सच्ची अभीप्सा जाग्रत करनी होती है। वैसे तो अनंत और असीम के आध्यात्मिक सत्य में पूरी तरह प्रवेश कर पाना संभव नहीं है, फिर भी अंतस् चेतना जाग्रत होने के बाद दिव्यता एवं पावनता का अनुभव होता है।

यह भाव व्यक्तिगत मानदंडों से उच्च होता है। इसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। सबसे नीचे है शारीरिक जीवन, जो आवश्यकताओं और कामनाओं से बँधा है। मध्य में है मानसिक यानी उच्चतर भावों का जीवन, जो महत्तर अभिरुचियों, अभीप्साओं, अनुश्रुतियों और विचारों से सराबोर है। शिखर है—गहनतर चैत्य और आध्यात्मिक स्थिति।

आध्यात्मिक जीवन में जब चेतना की अभिव्यक्ति होती है तो इच्छाएँ, वासनाएँ लुप्त होने

लगती हैं। इसके बाद आत्मा परमात्मा से तादात्म्य कर लेती है। अनंत का विशाल स्वरूप उसमें उमड़ने-घुमड़ने लगता है।

सदियों पूर्व से भारत का आदर्श अध्यात्म पर आधारित रहा है। अध्यात्म का आदर्श भी विज्ञान से संबंधित है। यदि अध्यात्म के आदर्श के साथ मानव की वैज्ञानिक उपलब्धियों को भी समाहित कर लिया जाए तो नवीन आयाम प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

संपूर्ण विश्व में देश को इस क्षेत्र में अपना स्थान सुनिश्चित करने के लिए अध्यात्म के साथ आधुनिकतम शोध एवं अनुसंधानों को भी साथ लेकर चलना चाहिए।

पश्चिम के आदर्श हैं—प्रगति, स्वाधीनता, समानता, अर्थ एवं उपभोग। ये सभी विज्ञान के चमत्कार हैं, जिन्हें आत्मसात् करते-करते भौतिकवादी ऊब चुके हैं। भौतिक रूप से संपन्न मानव अब अध्यात्म हेतु भटक रहा है।

आज की भौतिक उपलब्धियाँ हमारे मन को शांति प्रदान करने में अक्षम साबित हुई हैं। मन की शांति अध्यात्म की ओर मुड़ने के बाद ही प्राप्त हो सकती है। विज्ञान की उपलब्धियों के साथ यदि अध्यात्म का सामंजस्य हो जाता है तो संपूर्ण मानव जाति का कल्याण हो जाएगा।

आध्यात्मिक आनंद दिखावेरहित परोपकार, त्याग, प्यार एवं करुणा के भावों से ही प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में आध्यात्मिक क्रांति अपने अवसर की प्रतीक्षा में है। जब तक यह क्रांति नहीं होती, तब तक परिवर्तन संभव नहीं है। अत: प्रकृति एवं मानव की समस्त ऊर्जा का उपयोग करने के लिए अध्यात्म एवं विज्ञान का सामंजस्य सुखद होगा।

भौतिक संसाधनों के सदुपयोग एवं सुनियोजन में ही विज्ञान की उपादेयता है। इससे हमारा दैहिक जीवन स्वस्थ एवं पुष्ट होता है। स्वस्थ शरीर में स्वच्छ मन, निर्मल भाव का विकास संभव है। मन एवं भाव का परिष्कार ही अध्यात्म है। इस प्रकार विज्ञान से अध्यात्म की ओर की यात्रा सहज-सरल हो जाती है। ❑

एक दिन भिक्षु संग्राम ने भगवान बुद्ध से पूछा—''संसार के प्रमाद में पड़े हुए की क्या पहचान है ?'' भगवान बुद्ध ने समय आने पर बताने के लिए कहा। दूसरे दिन कुंडिया नगर की कोलियपुत्री सुप्पवासा के यहाँ उनका भोज था। भगवान बुद्ध की कृपा से सुप्पवासा को पुत्र प्राप्ति हुई थी। बुद्ध ने सुप्पवासा से पूछा—''बेटी सुप्पवासा! तू कितने और पुत्रों की कामना करती है ?''

सुप्पवासा ने कहा—''भगवन्! मेरे सात पुत्र और हों तो अच्छा है।'' संग्राम निकट ही बैठे थे। कल तक जो प्रसव पीड़ा से बुरी तरह व्याकुल थी, आज पुन: पुत्रों की कामना कर रही है, यह सुनकर उनने आश्चर्य से भगवान बुद्ध की ओर देखा। बुद्ध ने हँसकर कहा—''भंते! मनुष्य नित्य अपनी कामनाओं को पूर्ण-अपूर्ण होते देखता है, तब भी नई कामनाओं के मोह से मुक्त नहीं होता है। यही प्रमादी का लक्षण है।''

प्रकृति के संग स्वस्थ व निरोगी जीवन

प्रकृति जीवन का, स्वास्थ्य का, हर तरह के पोषण का स्रोत है। हर जीव-जंतु इसकी गोद में प्राकृतिक प्रेरणा से जीवन जीते हैं। उनका आहार-विहार और जीवन प्राकृतिक नियमों से बँधा होता है। अत: वे स्वस्थ-नीरोग जीवन जीते हैं। एक मनुष्य ही है, जो प्रकृति के विरुद्ध चलता है, पग-पग पर इसके नियमों को तोड़ता रहता है और इसके गंभीर परिणाम भोगता है। जो लोग अप्राकृतिक जीवन जीते हैं, वे बीमार रहते हैं और असमय ही मृत्यु के ग्रास बनते हैं।

सभी जीव-जंतु और पशु-पक्षी प्रकृति का अनुसरण करते हैं। परिणामस्वरूप उन्हें किसी तरह की बीमारियाँ नहीं होतीं और न ही किसी चिकित्सक या वैद्य की आवश्यकता पड़ती है; जबकि मनुष्य की देख-रेख में पाले गए पशु-पक्षी अप्राकृतिक जीवन के लिए विवश होते हैं तथा यदा-कदा बीमार पड़ते रहते हैं व उनके लिए पशु चिकित्सालय खोले जाते हैं, लेकिन जंगलों में प्रकृति की गोद में स्वच्छंद विचरण कर रहे जीव-जंतुओं में किसी तरह की कमजोरी या बीमारी नहीं देखी जाती।

इसी तरह जो व्यक्ति प्राकृतिक जीवन जीते हैं, वे स्वस्थ-नीरोग व दीर्घायु पाए जाते हैं। प्राचीनकाल में इसी आधार पर व्यक्ति सौ वर्ष तक स्वाभाविक रूप में जीवित रहते थे। वेदों में, **जीवेम शरद: शतम्** अर्थात सौ वर्ष तक जीने की बात कही गई है। वस्तुत: स्वस्थ व निरोगी रहना बहुत कुछ प्राकृतिक तत्त्वों की स्थिति पर निर्भर करता है। आहार-विहार की लापरवाही के कारण इन तत्त्वों का संतुलन बिगड़ता रहता है, फलस्वरूप कई प्रकार के रोग खड़े हो जाते हैं।

वायु की मात्रा में अंतर आने पर गठिया, लकवा, कंप, अकड़न, नाड़ी विक्षेप आदि रोग पनपते हैं। अग्नि तत्त्व के असंतुलन से फोड़े-फुंसियाँ, रक्त विकार, हैजा, दस्त, क्षय आदि हो जाते हैं। जल तत्त्व की गड़बड़ी के चलते पेचिश, संग्रहणी, प्रमेह, जुकाम, खाँसी जैसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

पृथ्वी तत्त्व के बढ़ने पर हाथीपाँव, तिल्ली-जिगर, रसौली, मेदवृद्धि—मोटापा जैसे रोग हो जाते हैं। आकाश तत्त्व के विकार के कारण मूर्च्छा, मिरगी, उन्माद, पागलपन, सनक, अनिद्रा, वहम, घबराहट, दु:स्वप्न, बहरापन, विस्मृति आदि रोग जीवन को आक्रांत करते हैं।

इन तत्त्वों के मिश्रित विकारों की मात्रा के अनुसार नानाविध रोग उत्पन्न होते हैं। इस तरह पंचतत्त्वों की न्यूनता व अधिकता रोगों का कारण बनती है। जिस तत्त्व के कारण विकार उठ खड़े होते हैं, उसके कारण को दूर करने पर अन्य विकार भी दूर हो जाते हैं। यह स्पष्ट है कि पंचतत्त्वों से बनी इस काया को प्रकृति के नियमों का अनुसरण करते हुए स्वस्थ व नीरोग रखा जा सकता है। इसमें पंचतत्त्वों का संतुलन एक अहम भूमिका निभाता है।

विदित हो कि मिट्टी में विष को खींचने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है। शरीर के जिस भाग में गीली मिट्टी को लगाया जाता है, वहाँ के विकार खिंचे चले आते हैं और शरीर काफी हद तक विष से हलका हो जाता है। आजकल साबुन का प्रयोग

चलन में है, किंतु विज्ञजनों की मानें तो मिट्टी का प्रयोग इससे हजार गुना बेहतर होता है।

साबुन में पड़ने वाले कास्टिक सोडा से त्वचा में शुष्कता आती है व यह रोमकूपों को बंद करता है; जबकि मिट्टी मैल को दूर करती है, इसमें तरावट लाती है, रोमकूपों को साफ करती है, विष को खींचकर त्वचा को तरोताजा करती है। मिट्टी लगाकर स्नान करना एक अच्छा उबटन है, इससे गरमियों के दिनों में शरीर से फोड़े-फुंसियाँ दूर होती हैं। आश्चर्य नहीं कि सिर में मुल्तानी मिट्टी लगाकर स्नान करने का चलन आज भी है।

रोगों के उपचार में गीली मिट्टी की पट्टी बनाकर उपयोग करना बेहतर रहता है। इसके लिए साफ स्थान की कूड़े-कचरे व कंकड़रहित मिट्टी का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए मिट्टी को कूट-पीसकर चलनी से छानकर उपयोग किया जा सकता है। मिट्टी जितनी चिकनी हो, उतनी अच्छी रहती है। बालू, रेत या भुरभुरी मिट्टी से वह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

अग्नि चेतनता, क्रियाशीलता व सृजन का प्रतीक है। इसके महत्त्व को समझते हुए वेदों का पहला मंत्र अग्नि के नाम समर्पित है—**अग्निमीले पुरोहितं**। सूर्य अग्नि तत्त्व का मूर्तिमान प्रतीक है। सूर्य को जगत् की आत्मा कहा गया है। जिन पेड़-पौधों व जीव-जंतुओं को सूर्य की रोशनी पर्याप्त मात्रा में मिलती है, वे स्वस्थ व नीरोग रहते हैं तथा जहाँ इसका अभाव पाया जाता है, वे अविकसित व अस्वस्थ अवस्था में पाए जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने सूर्य की अल्ट्रा-वायलेट और अल्फा-वायलेट किरणों को स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से उपयोगी पाया है। मशीनों तक से इनका कृत्रिम निर्माण किया जाने लगा है, लेकिन सूर्य की प्राकृतिक किरणों का कोई विकल्प नहीं है। सूर्य की किरणों के आधार पर क्रोमोथैरेपी नाम की स्वतंत्र चिकित्सापद्धति का आविष्कार हुआ है, जिसमें रंगीन काँच के सहारे सूर्य की किरणों को रोगी तक आवश्यकतानुसार पहुँचाया जाता है।

रोग-कीटाणुओं को नष्ट करने की जितनी क्षमता सूर्य में है, उतनी और किसी में नहीं। इसलिए नित्य सूर्यस्नान को किया जाए तो स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक रूप से सुधार किया जा सकता है। इसके लिए प्रातःकालीन सूर्यकिरणें सर्वोत्तम रहती हैं, जिसमें शरीर पर न्यूनतम कपड़ों के साथ सूर्य की हलकी किरणों को पड़ने दिया जाता है।

ज्ञात हो कि शरीर में 90 प्रतिशत जल तत्त्व रहता है तथा 10 प्रतिशत अन्य। इसलिए शरीर को जल की सबसे अधिक आवश्यकता रहती है। शरीर में जल तत्त्व की कमी के कारण कई तरह के विकार उभरते हैं। देह सूखने लगती है, नाड़ियाँ जकड़ने लगती हैं, रक्त गाढ़ा हो जाता है और खुश्की, दाह, प्यास आदि के लक्षण उभरने लगते हैं। प्रतिदिन पर्याप्त मात्रा में जल पीने से शरीर को आवश्यक पोषण मिलता है तथा शरीर के भीतरी अंगों से उत्पन्न पसीने, मूत्र, मल जैसे विकार द्रव्य के रूप में निष्कासित होते हैं।

स्नान के रूप में जल तत्त्व के औषधीय उपयोग प्रत्यक्ष हैं। स्नान के बाद जो चेतनता, स्फूर्ति आती है, उसे हर कोई नित्य अनुभव करता है। हमारी संस्कृति में इसीलिए स्नान को विशेष महत्त्व दिया गया है। स्नान करना दैनिक कृत्य समझा जाता है एवं इसीलिए यहाँ 'बिना स्नान भोजन नहीं', का नियम रहा है।

मोटे खुरदरे तौलिए से रगड़कर किया गया स्नान बहुत उपयोगी रहता है, जिससे त्वचा के बारीक छिद्र साफ होते हैं, साथ ही घर्षण द्वारा गरमी बढ़ाकर शीतल जल से स्नान करने से शरीर सशक्त बनता है। धीरे-धीरे प्रसन्नतापूर्वक हर अंग की सफाई के साथ किया गया स्नान बहुत उपयोगी रहता है। नदी या तालाब में तैरकर किया गया स्नान भी कई दृष्टि से लाभकारी रहता है। बारिश

के निर्मल जल में भी मौसम को देखते हुए स्नान का आनंद लिया जा सकता है।

वायु—पृथ्वी, जल व अग्नि तत्त्वों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है, इसलिए यह अधिक गुणकारी व प्रभावशाली भी है। अन्न व जल के बिना व्यक्ति कुछ समय जीवित रह सकता है, लेकिन बिना वायु के क्षणभर भी काम नहीं चलता।

शरीर में अन्य तत्त्वों से जुड़े विकार उतने खतरनाक नहीं होते, जितने कि वायु विकार। जिस स्थान पर वायु विकृति होगी उस अंग में तीव्र वेदना का अनुभव होता है। जिस स्थल की वायु खराब होती है, वहाँ तरह-तरह के रोग व महामारियाँ पनपती हैं एवं वहाँ कोई रहना पसंद नहीं करता। विधिवत् प्राणायाम करने वाले वायु-साधना के महत्त्व को जानते हैं। निस्संदेह वायु का स्वास्थ्य से घनिष्ठ संबंध है, उसका उचित उपयोग कर बिगड़े स्वास्थ्य को ठीक किया जा सकता है।

ऋषियों द्वारा खोजी गई यज्ञ-हवन पद्धति इसका एक उत्कृष्ट उपयोग है। धार्मिक के साथ इसके स्वास्थ्य संबंधी लाभ अनगिनत हैं। यज्ञ शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है। इसमें जहाँ औषधियाँ वायुभूत होकर प्रत्यक्ष लाभ देती हैं तो वहीं इसके साथ यज्ञीय भावना के साथ किया गया कृत्य मानसिक रोगों को गहराइयों से ठीक करता है।

आकाश सबसे सूक्ष्म तत्त्व है, जो हर पोले और ठोस पदार्थ में न्यूनाधिक मात्रा में व्याप्त है। आकाश का गुण शब्द माना गया है। जितने भी शब्द हैं, वे आकाश के कारण हैं। यदि आकाश न हो तो शंख-घंटा, घड़ियाल, तोप-बंदूक, मोटर किसी की आवाज न सुनाई दे। यहाँ तक कि हमारा वार्त्तालाप तक संभव न हो सके।

शब्द के भी दो भेद हैं—ध्वनि और विचार। शब्दों द्वारा हम अपने विचार, भाव व अनुभूतियों को दूसरों तक पहुँचाते हैं। इसी तरह विचारों का अपना विज्ञान है। मस्तिष्क से जो विचार उठते हैं, वे विद्युत तरंगों की भाँति आकाश में फैल जाते हैं व कभी नष्ट नहीं होते। ये अपनी तरह के विचारों के साथ मिलकर विचार बादल-सा रूप बनाकर इधर-उधर उड़ते रहते हैं।

यदि कोई क्रोध, धूर्तता, वासना, आत्महत्या आदि के नकारात्मक विचार करता है, तो अनेक व्यक्तियों के वैसे ही भूतकाल या वर्तमान के किए गए या किए जा रहे विचार वहाँ आकर इकट्ठा हो जाते हैं। परिणामस्वरूप उस दिशा में इस तरह की प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं और नई-नई युक्तियाँ सूझती हैं। उसी तरह सद्भाव, पवित्रता, त्याग, परमार्थ, संयम जैसे विचार उठने पर अनेक साधकों व महापुरुषों के किए हुए विचार इकट्ठा होते हैं और व्यक्ति को सन्मार्ग के लिए प्रेरित करते हैं।

इस प्रकार पंचतत्त्वों के इन कुछ सर्वमान्य प्रयोगों के आधार पर प्रकृति से तालमेल बिठाते हुए आवश्यक स्वास्थ्य लाभ उठाया जा सकता है। साररूप में प्रकृति के साहचर्य में इसके नियमों के अनुकूल जिया गया जीवन ही स्वस्थ व नीरोग रहता है। ❑

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्॥

अर्थात—सर्वदा गायत्री रूप में विद्यमान रहने वाले उन सद्गुरुदेव को हम नमस्कार करते हैं, जिनके वाणीरूपी अमृत से संसाररूपी विष नष्ट हो जाता है।

सम्मोहन चिकित्सा का प्रभाव

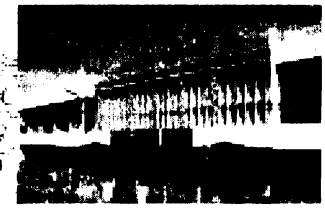

चिंता, तनाव और अवसाद जैसी मानसिक समस्याएँ आज मनुष्य जीवन का अंग बन बैठी हैं। पूरी दुनिया की एक बड़ी आबादी इन मनोविकारों से जूझ रही है। इससे संबंधित विभिन्न शोध अध्ययनों के आँकड़े एवं परिणाम दु:खद स्थिति प्रकट करते हैं।

समस्या के निरंतर गंभीर होते जाने का एक बड़ा कारण यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में तनाव व अवसाद जैसे मनोरोगों के उत्पन्न होने की वजह भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए इनके एकरूप प्रबंधन एवं निराकरण के उपायों को खोजने में भी परेशानियाँ आती हैं।

जीवनशैली का असंतुलन, आरामतलब दिनचर्या, विकृत चिंतन, अत्यधिक कार्यभार, आहार-विहार की गलत आदतें, व्यसन, असमायोजन, परिवेश का दबाव जैसे सैकड़ों कारण हैं, जो व्यक्ति को चिंता और अवसाद की स्थिति में ले जाते हैं।

चिंता और अवसाद—ये दोनों ही ऐसी मानसिक समस्याएँ हैं, जो व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य, संबंध और व्यवहार पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

फलस्वरूप स्वास्थ्य की अनेक समस्याएँ, पारिवारिक व सामाजिक जीवन में दूरी, क्रोध, आवेग, चिड़चिड़ापन, भावुकता, अनिद्रा, घबराहट, बेचैनी, अस्थिरता, भय, निराशा जैसी अनेक अंत:-बाह्य परेशानियों से व्यक्ति घिर जाता है। कई बार तो व्यक्ति चिंता और अवसाद जैसी स्थिति में इतना उलझ जाता है कि आत्महत्या जैसे घातक कदम तक उठा लेता है।

आधुनिक मनोविज्ञान की चिकित्सा-प्रणालियाँ चिंता और अवसाद की स्थिति को दवाइयों तथा मनोवैज्ञानिक मदद से कुछ हद तक कम करने व व्यक्ति को इन समस्याओं से बाहर आने में सहयोगी अवश्य हैं, परंतु इनसे इन मनोविकारों का समग्र और समुचित प्रबंधन नहीं हो पाता है और न ही ये जड़ से खतम होते हैं।

ऐसे में भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों, योग, आयुर्वेद व अन्य आध्यात्मिक तकनीकों की ओर सहज ध्यान जाता है। इन्हीं तकनीकों में से एक यौगिक तकनीक है—हिप्नोटिज्म अर्थात सम्मोहन।

हिप्नोथैरेपी को मनोचिकित्सा के क्षेत्र में एक कारगर उपाय के रूप में देखा जा रहा है। विशेषकर चिंता, अवसाद जैसे मनोविकार, जिनकी जड़ें अवचेतन मन में होती हैं, ऐसी समस्याओं के सुस्पष्ट निदान और समाधान में हिप्नोथैरेपी अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकती है।

वर्ष 2016 में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत हिप्नोथैरेपी को लेकर एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन किया गया है। यह शोधकार्य शोधार्थी सचिन कुमार द्विवेदी द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 अनुराधा कोटनाला के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस अध्ययन का विषय है—**'इम्पेक्ट ऑफ हिप्नोथैरेपी इन मिटिगेटिंग दि सिम्पटम्स ऑफ एन्जाइटी एंड डिप्रेशन।'**

शोधार्थी द्वारा शोध अध्ययन के प्रयोग हेतु दिल्ली, एन.सी.आर. एवं झाँसी (मध्य प्रदेश) के

मनोचिकित्सा से संबद्ध विभिन्न क्लीनिकों एवं अस्पतालों से कुल सौ लोगों का चयन किया गया। सभी चयनितों की उम्र 25 से 45 वर्ष एवं शिक्षा स्नातक अथवा स्नातकोत्तर थी। इनमें 50 ऐसे लोग थे, जो चिंता-मनोव्याधि से ग्रस्त थे एवं शेष 50 अवसाद से ग्रस्त थे।

प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित लोगों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। स्वास्थ्य परीक्षण हेतु जिन शोध-उपकरणों को प्रयुक्त किया गया; वे हैं—डॉ. ए.के. सिन्हा एवं डॉ. एल. एन. के. सिन्हा. (1995) द्वारा निर्मित SCAT (सिन्हा कम्प्रेहन्सिव एन्जाइटी टेस्ट), डॉ. एल. एन. दुबे द्वारा निर्मित M.D.S.(मेन्टल डिप्रेशन स्केल), शोधार्थी द्वारा क्लीनिकल इन्टरव्यू केस स्टडी एवं M.S.E, हरि एरोन द्वारा निर्मित एरोन्स डेप्थ स्केल एवं स्क्रिप्ट इन हिप्नोथैरेपी।

प्रारंभिक परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा रोगियों को उनकी प्रकृति, स्वभाव और समस्या के स्तर के अनुरूप तीन माह की अवधि में हिप्नोथैरेपी प्रदान की गई। हिप्नोथैरेपी के लिए आठ सत्रों का निर्धारण किया गया तथा प्रत्येक सत्र (सेशन) को एक निश्चित अंतराल पर संपन्न किया गया; यथा- प्रथम, द्वितीय व तृतीय सत्र में दो दिन का अंतराल, तृतीय व चतुर्थ सत्र में सात दिनों का और चतुर्थ व पंचम सत्र में भी सात दिनों का अंतराल रखा गया।

अगले क्रम में पंचम व षष्ठम सत्र में चौदह दिन, षष्ठम व सप्तम सत्र में इक्कीस दिन तथा सप्तम व अष्टम सत्र में तीस दिन का अंतराल रखा गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर शोधार्थी द्वारा पूर्व की भाँति सभी चयनितों का पुन: स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

दोनों शोध परीक्षणों से प्राप्त तथ्यों एवं आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी द्वारा यह देखा गया कि प्रयोग के परिणाम सार्थक एवं सकारात्मक प्राप्त हुए हैं। अत: निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि चिंता और अवसाद के लक्षणों को कम करने में हिप्नोथैरेपी का सार्थक प्रभाव पड़ता है। हिप्नोथैरेपी को उक्त मनोविकारों के नियंत्रण एवं प्रबंधन के एक कारगर एवं प्रभावी उपाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

इस शोध अध्ययन के परिणामों में जो सार्थकता एवं सकारात्मकता के तथ्य प्राप्त हुए हैं, इसकी मुख्य वजह शोधार्थी द्वारा चयनित हिप्नोथैरेपी की विशिष्ट तकनीक है। हिप्नोसिस एक ऐसी विधि है, जिसके द्वारा आंतरिक चेतना में प्रवेश कर वहाँ स्थिरता, शांति और सजगता को उत्पन्न किया जाता है साथ ही इच्छानुरूप अवचेतन मन को निर्देशित किया जाता है।

इस विधि का मनोचिकित्सा के क्षेत्र में कुशल एवं योग्य प्रशिक्षक द्वारा केवल उपचार के उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है। इस अध्ययन में प्रयुक्त हिप्नोथैरेपी को आठ क्रमिक सोपानों में वर्गीकृत कर यह शोध प्रयोग संपन्न किया गया है।

प्रथम चरण है—हिप्नोथैरेपी मरीज को आवश्यक जानकारी और समझ प्रदान करना तथा इसके प्रति विश्वास और संतुष्टि का भाव उत्पन्न करना। द्वितीय चरण है—हिप्नोटिक इन्डक्शन। इसमें मरीज को कृत्रिम निद्रावस्था अथवा चेतन से अवचेतन में ले जाने के लिए प्रेरित किया जाता है। प्रशिक्षक इसके लिए निर्धारित निर्देशों को बोलते हुए आँखों की स्थिरता अथवा हाथों के उत्तोलन की प्रक्रिया को प्राय: अपनाते हैं।

तृतीय चरण में हिप्नोसिस की प्रक्रिया को गहन बनाया जाता है। इसके लिए श्वास-प्रश्वास की क्रिया तथा आंतरिक विश्राम की कल्पना को उपयुक्त समझा जाता है। मरीज की मानसिक चेतना

को भीतर विश्रांति की गहराई में ले जाने तथा उसी अवस्था में निर्देशों को ग्रहण करने की स्थिति में लाया जाता है। गिनती करने की तकनीक अथवा काल्पनिक रीति से नीचे की ओर गति की तकनीक द्वारा हिप्नोथैरेपी के इस चरण को कुशलतापूर्वक पूर्ण किया जाता है।

हिप्नोथैरेपी के चतुर्थ चरण पर उपचारकर्त्ता मरीज को कृत्रिम मूर्च्छा अथवा उसके नींद की गहराई में पहुँच जाने पर उसकी हिप्नोसिस अवस्था का उपचार में प्रयोग करता है। समस्या के अनुरूप मरीज की भीतरी चेतना को निर्देशित किया जाता है। थैरेपी के पंचम चरण में मरीज के अहं (ईगो) को मजबूत बनाया जाता है।

मनोविश्लेषण के सिद्धांत के अनुसार हमारे अंत:-बाह्य व्यक्तित्व की संरचना एवं व्यवहार में अहं-शक्ति की मूख्य भूमिका होती है। अहं-शक्ति के कमजोर होने से आवेश, हीनता, अतिसंवेदनशीलता, अस्थिरता, द्वंद्व, भ्रांति जैसे विकारों से व्यक्तित्व ग्रसित हो जाता है। हिप्नोथैरेपी में इसी अहं-शक्ति को मजबूत बनाने का प्रयास किया जाता है, ताकि मरीज की समस्या का उपचार प्रभावकारी हो सके।

षष्ठम चरण में मरीज को हिप्नोसिस सत्र की समाप्ति के पश्चात की अवस्था के विषय में परामर्श प्रदान किया जाता है। इससे हिप्नोसिस तकनीक के संभावित नकारात्मक प्रभावों को नियंत्रित करने में आसानी होती है।

सप्तम स्तर पर सेल्फ हिप्नोसिस का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। स्व-सम्मोहन में व्यक्ति स्वतंत्रता और वास्तविकता में स्वयं के विषय में चिंतन, विश्लेषण और सच्चाई का अनुभव कर पाता है।

इसमें व्यक्ति की स्वयं भी गलतियों, कमियों की स्वतंत्र रूप से स्वीकारोक्ति के साथ ही उन्हें ठीक करने की दिशा में प्रयास करना भी सम्मिलित है। हिप्नोथैरेपी के अंतिम चरण में मरीज को हिप्नोसिस की अवस्था से बाहर सामान्य अवस्था में लाया जाता है। इन्हीं उक्त आठ क्रमिक सोपानों में थैरेपी की उपचारात्मक प्रक्रिया पूर्ण की जाती है।

शोधार्थी का मत है कि आधुनिक मनोचिकित्सा के क्षेत्र में हिप्नोथैरेपी अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है। इस अध्ययन के परिणाम भी इसके महत्त्व की पुष्टि करते हैं। मनोचिकित्सा में इसकी सहायता से उपचार-प्रक्रिया को ज्यादा प्रभावी कारगर और नकारात्मक प्रभावों से मुक्त बनाया जा सकता है।

हिप्नोथैरेपी में मरीज अपनी बाह्य और आंतरिक कमजोरियों के कारणों को स्वयं खोजता है और उनसे बाहर निकालने के लिए स्वयं को तैयार कर पाता है। चिंता और अवसाद जैसी स्थिति से व्यक्ति बाहर आने के लिए किसी योग्य प्रशिक्षक से प्रशिक्षण प्राप्तकर स्व-सम्मोहन की तकनीक का प्रयोग कर सकता है। इस उपचार-विधि की न तो कोई लत लगती है न कोई विशेष आर्थिक भार पड़ता है और दवाइयों आदि के दुष्प्रभावों से बचने के लिए भी यह चिकित्सा एक सुरक्षित विकल्प है। ❑

त्वय्यनन्तमहाम्भोधौ विश्ववीचिः स्वभावतः।
उदेतु वास्तमायातु न ते वृद्धिर्न वा क्षतिः॥

—अष्टावक्र गीता, 15/11

अर्थात—आत्मारूपी अनंत महासमुद्र में विश्वरूपी लहर अपने स्वभाव से उदय और अस्त को प्राप्त होती है, परंतु उससे न तेरी वृद्धि होती है और न ही नाश ही।

बुजुर्गों को सम्मान और प्यार दें

भारतीय समाज में वरिष्ठ नागरिकों को सम्मान और प्यार देने की परंपरा है। कहने को तो वे भी प्यार और सम्मान के हकदार हैं, लेकिन असलियत में वे बुरी तरह से उपेक्षित हैं। रिसर्च एंड एडवोकेसी सेंटर ऑफ एज वेल फाउन्डेशन द्वारा कराए गए एक सर्वेक्षण में खुलासा हुआ है कि आज युवा पीढ़ी न केवल वरिष्ठ जनों के प्रति लापरवाह है, बल्कि वह उन लोगों की समस्याओं के प्रति जागरूक भी नहीं है। वह पड़ोस के बुजुर्गों के लिए तो सम्मान दिखाने के लिए तत्पर दिखती है मगर अपने ही घर के बुजुर्गों की उपेक्षा करती है तथा उन्हें नजरअंदाज करती है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार 59.3 फीसद लोगों का मानना है कि समाज और घर में बुजुर्गों के साथ व्यवहार में विरोधाभास है। केवल 14 फीसद का मानना है कि घर हो या बाहर—दोनों ही जगह बुजुर्गों की हालत एक जैसी है, उसमें कोई अंतर नहीं है। जबकि 23 फीसद के अनुसार घर में बुजुर्गों का सम्मान खतम हो गया है। वह बात अलग है कि कुछ फीसद की राय में घर में बुजुर्गों को सम्मान दिया जाता है।

वास्तविकता तो यह है कि परिवार के सदस्य अपने घर के बुजुर्गों को हलके में लेते हैं— इसके बावजूद बुजुर्ग उन पर अपना अधिकार तक नहीं जताना चाहते हैं। वे उस उम्र में भी सक्रिय रहना चाहते हैं। विगत दिनों संपन्न हुए शोध अध्ययन की मानें तो 50 फीसद से ज्यादा बुजुर्ग लोग यह मानते हैं कि कार्यस्थलों पर भी उनके साथ भेदभाव होता है, जिसके चलते उनकी पदोन्नति भी बहुत प्रभावित होती है।

तात्पर्य यह कि बुजुर्ग हर जगह उपेक्षित हैं और आज की युवा पीढ़ी उन्हें बेकार की चीज मानने लगी है। वह यह नहीं सोचती कि उनके अनुभव उनके लिए बहुमूल्य हैं, जो उनके जीवन में पग-पग पर महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। देखा जाए तो संयुक्त परिवार के प्रति जो प्रतिबद्धता युवाओं में साठ-सत्तर के दशक तक दिखाई देती थी, आज उसका चौथाई हिस्सा भी नहीं दिखाई देता।

अनेक महिलाएँ मानती हैं कि जहाँ तक परिवार का सवाल है, हमारा परिवार तो मैं, मेरे पति व मेरे बच्चे में सिमट गया है। सास-ससुर व देवर-ननद हमारा परिवार नहीं है। विडंबना तो यह है कि पत्नी के कथन से पति भी प्राय: पूरी तरह सहमत दिखते हैं। इस स्थिति में संयुक्त परिवार की कल्पना ही व्यर्थ है। इस स्थिति में सबसे ज्यादा प्रभावित परिवार के बुजुर्ग ही होते हैं। इसमें दो राय नहीं कि जो सुरक्षा और सम्मान परिवार के बुजुर्गों को आज से 40-50 साल पहले प्राप्त था— वह आज नहीं है।

बुजुर्गों के प्रति सम्मान की भावना हमारी संस्कृति और परंपरा को दरसाती है। इसका श्रेय भी संयुक्त परिवार प्रथा को जाता है। भारतीय संयुक्त परिवार प्रथा में बुजुर्गों का स्थान सम्मानजनक रहा है। परिवार के मुखिया को विशिष्ट सलाहकार और नियंत्रक के रूप में माना जाता रहा है। पश्चिमी प्रभाव, शहरीकरण और वैश्वीकरण के इस दौर ने संयुक्त परिवार प्रथा को बुरी तरह झकझोरकर रख दिया है। हमारे यहाँ संयुक्त परिवार टूट रहे हैं,

जबकि पश्चिमी जगत् में हमारी संयुक्त परिवार-प्रथा को एकाकी जीवन से छुटकारा पाने का एक कारगर उपाय माना जा रहा है।

आज के समय की सबसे अहम जरूरत बुजुर्गों की परेशानियों के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की है, ताकि वे मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक रूप से खुद को समाज और परिवार से अलग-थलग न महसूस करें।

सरकार को चाहिए कि वह उनके लिए समुचित पेंशन की व्यवस्था करे और उन्हें सुरक्षा प्रदान करे। साथ ही सन् 1999 में इसके लिए बनी नीति की समीक्षा भी की जाए, जिससे यह पता चल सके कि आखिर उनकी जरूरतों को किस तरह पूरा किया जा सकता है। सबसे पहले घर के बुजुर्गों का ख्याल न रखने वाले परिवार के सदस्यों पर कड़ाई का कानून जो सन् 2007 में बनाया गया है, उसे और कड़ा किया जाए।

जब वे ही अपने दायित्व से विमुख हो जाएँगे, उस दशा में सरकार के प्रयास बेमानी साबित होंगे। इसमें दो राय नहीं कि बुढ़ापे में संतान अक्सर उनसे छुटकारा पाना चाहती है। वह बूढ़े हो चुके माँ-बाप को एक बोझ समझती है।

केंद्र सरकार ने महिलाओं की तरह ही बुजुर्गों के लिए अलग से बजट बनाने पर काम शुरू किया है, ताकि बुजुर्गों की उचित देख-भाल की जा सके और आबादी के इस आठ फीसद हिस्से को सुरक्षा, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाएँ प्रदान कर उनके हितों की रक्षा कर वह अपना दायित्व पूरा कर सके।

सरकार का यह प्रयास और इस वर्ग के प्रति उसकी जागरूकता सराहनीय है, लेकिन इस पर अमल कब तक होगा वह भगवान भरोसे है। विशेषकर स्वास्थ्य के संबंध में स्थिति विशेष चिंतनीय है। अन्य विशेषाधिकारों पर भी आए दिन तलवार लटकती रहती है।

'राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति' मोटेतौर पर अपने 2015 के लक्ष्य से भी कुछ कमतर ही दिखती है। इसमें इस साल बजट में बताई गई बातों का कुछ अंश है और 12वीं योजना के लिए पूर्व योजना आयोग द्वारा गठित उच्चस्तरीय विशेषज्ञ समिति के तय किए स्वास्थ्य लक्ष्यों की भी बात है, लेकिन यह स्वास्थ्य को उस तरह अधिकार नहीं बनाती, जैसे 2005 में शिक्षा का अधिकार कानून ने शिक्षा को सबका हक बना दिया था। इसके पहले 2002 में 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति' लाई गई थी।

नई नीति के तहत सरकार का दावा है कि स्वास्थ्य के मद में खरच को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद या जीडीपी का 2.5 प्रतिशत किया जाएगा। इसके लिए सन् 2025 तक लक्ष्य रखा गया है लेकिन 12वीं योजना की विशेषज्ञ समिति ने जीडीपी का इतना प्रतिशत खरच करने का लक्ष्य इसी अवधि तक रखा था।

सन् 2011 में उस रिपोर्ट में कहा गया था कि स्वास्थ्य के मद में जीडीपी के मौजूदा 1.2 प्रतिशत खरच को बढ़ाकर 12वीं योजना की अवधि खतम होने तक 2.5 प्रतिशत और सन् 2022 तक कम-से-कम 3 प्रतिशत किया जाना चाहिए, ताकि विशेषकर महिलाओं, बच्चों, बुजुर्गों का स्वास्थ्य सुधर सके।

देश में जिस तरह स्वास्थ्य की समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं, उससे सरकार से इस पर और गंभीरता से विचार करने की उम्मीद थी। देश में कुपोषण और बीमारियों का दायरा लगातार बढ़ता जा रहा है।

उसके मुकाबले सरकारी स्वास्थ्य सेवाएँ लगातार सिकुड़ती जा रही हैं। दवाइयों और इलाज का खरच लगातार बढ़ता जा रहा है। हाल के कुछ सर्वेक्षणों से यह पता चलता है कि हर परिवार में दवाइयों और इलाज पर खरच लगातार बढ़ता जा रहा है।

कई मामले ऐसे भी हैं कि बड़ी बीमारियों के चलते कई परिवारों की माली हालत काफी खराब होती जा रही है। इसलिए नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति से उम्मीद थी कि वह राष्ट्रीय स्तर पर इन समस्याओं का कोई हल लेकर सामने आएगी, लेकिन इसमें नया केवल स्वास्थ्य बीमा योजना के ही मद में कुछ हद तक बढ़ोतरी का होना है। इससे खास राहत की उम्मीद नहीं है। बेहतर होता कि सरकार कुछ नए सिरे से विचार करती और उसके केंद्र में बुजुर्गों के स्वास्थ्य कल्याण को प्रमुखता देती। वर्तमान परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में इन्हीं कदमों को उठाने की और उन पर त्वरित रूप से क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है, ताकि इस महत्त्वपूर्ण समस्या का समुचित समाधान हो सके। ❑

चक्रवर्ती सम्राट भरत को भूमंडल जीतने के बाद अहंकार हो गया। वह इंद्रदेव के पास जाकर बोले—''मैंने संपूर्ण विश्व पर आधिपत्य कर लिया है, अपनी कीर्ति को अमर बनाने के लिए वृषभाचल पर्वत पर अपना नाम अंकित करना चाहिए।'' इंद्रदेव ने इस हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान की। राजा भरत ने वृषभाचल पर्वत पर जाकर देखा तो उन्होंने पाया कि पूरे पर्वत पर चक्रवर्ती सम्राटों के नाम अंकित हैं और एक नाम तक लिखने का स्थान भी रिक्त नहीं है। वे खिन्न होकर वापस लौट आए और इंद्रदेव से अपनी व्यथा कही। इंद्रदेव बोले—''आप चिंता न करें राजन्! आप किसी का नाम मिटाकर अपना नाम लिख दें। सहस्त्रों वर्षों से यही परंपरा चली आ रही है।''

यह सुनकर भरत बोले—''तो भविष्य में कोई मेरा भी नाम मिटा कर वहाँ अपना नाम लिख जाएगा।'' इंद्रदेव बोले—''इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आदिकाल से वर्तमान तक असंख्य चक्रवर्ती सम्राट हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे।'' यह सुनकर भरत का अहंकार विगलित हो गया और वे सोचने लगे कि इस विराट जगत् में अपना अस्तित्व है ही कितना। यह सोचना कितना गलत है कि जो कार्य हमने किया है, वह किसी ने न किया होगा और भविष्य में भी कोई नहीं करेगा। दुनिया में सदैव विभूतिवान पैदा होते रहे हैं और होते रहेंगे। अहंकार जाते ही भरत के मन में ऐसी शांति आई, जैसी पहले कभी न आई थी।

युगगीता- 272

अपनी रुचि के अनुसार लेते हैं व्यक्ति आहार

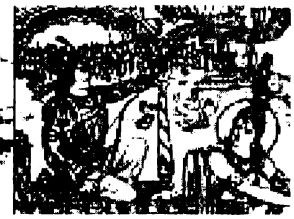

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की सातवीं-आठवीं एवं नौवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के सातवें श्लोक की विवेचना इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात शास्त्रीय कर्मों में भी गुणों को लेकर तीन प्रकार की रुचि होती है। यहाँ श्रीभगवान ने एक अत्यंत गंभीर बात अर्जुन से कही है। इससे पहले भगवान बोले थे कि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके अंत:करण में निहित भाव के अनुरूप होता है। जिसके अंत:करण में जैसा भाव होता है, वैसी ही उसकी श्रद्धा होती है और जिसकी जैसी श्रद्धा होती है—वैसी ही उसकी गति होती है। यहाँ श्रीभगवान कहते हैं कि आहार शरीर की प्राथमिक आवश्यकता है और व्यक्ति की श्रद्धा की पहचान मात्र उसके भजन-पूजन से ही नहीं होती, वरन भोजन के प्रति रुचि, उनके आहार से भी उनकी पहचान हो जाती है। वे कहते हैं कि कुछ लोगों का मन स्वाभाविक ही कुछ भोज्य पदार्थों को देखकर ललचाने लगता है और उसी लालसा के आधार पर उनकी पहचान भी हो जाती है। जैसी व्यक्ति की निष्ठा होती है, वैसा ही उसका आहार भी होता है।

श्रीभगवान इस श्लोक में कहते हैं कि मनुष्य अपनी अंतर्निहित श्रद्धा के अनुसार अपना आहार लेता है और जिस तरह से आहार तीन प्रकार का होता है, वैसे ही शास्त्रीय यज्ञ, तप आदि कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं। श्रीभगवान यहाँ उसी भेद का वर्णन करते हुए दिखाई पड़ते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥8॥

शब्दविग्रह—आयुः सत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः, रस्याः, स्निग्धाः, स्थिराः, हृद्याः, आहाराः, सात्त्विकप्रियाः।

शब्दार्थ—आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले (**आयुःसत्त्व बलारोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः**), रसयुक्त (**रस्याः**), चिकने (और) (**स्निग्धाः**), स्थिर रहने वाले (तथा) (**स्थिराः**), स्वभाव से ही मन को प्रिय-(ऐसे)(**हृद्याः**), आहार अर्थात भोजन करने के पदार्थ (**आहाराः**), सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं। (**सात्त्विकप्रियाः**)।

अर्थात आयु, सतोगुण, बल, आरोग्य, सुख और प्रसन्नता बढ़ाने वाले, स्थिर रहने वाले, हृदय को शक्ति देने वाले, रसयुक्त तथा स्नेहयुक्त ऐसे भोज्य पदार्थ सात्त्विक मनुष्य को प्रिय होते हैं। अति कड़ुए, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाहकारक पदार्थ राजसिक मनुष्य को प्रिय होते हैं, जो कि दु:ख, शोक और रोगों को देने वाले हैं और जो

भोजन सड़ा हुआ, रसरहित, दुर्गंधित, बासी और जूठा है तथा जो महान अपवित्र भी है, वह तामसिक मनुष्य को प्रिय होता है।

श्रीभगवान यहाँ एक अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण सत्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि आहार लेने वाले व्यक्ति की वृत्ति, रुचि एवं व्यक्तित्व के अनुसार ही उसकी भोज्य पदार्थों के प्रति आसक्ति होती है।

जिसका अंतर्मन जिस प्रकार का होता है, जिसका स्वभाव एवं जिसके गुण जिस प्रवृत्ति के होते हैं—वह उसी तरह के भोजन को करने की इच्छा रखता है और उसी तरह के भोज्य पदार्थों के प्रति आकर्षित भी होता है।

इसीलिए श्रीभगवान इन श्लोकों में '**प्रियाः**' '**तामसप्रियम्**', '**सात्त्विकप्रियाः**' जैसे शब्दों को उपयोग में लाते हैं, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ये भोज्य पदार्थ, उनको ग्रहण करने वाले व्यक्ति की अभिरुचि के अनुसार होते हैं।

सबसे पहले भगवान कृष्ण इसीलिए सात्त्विक प्रवृत्ति वाले मनुष्य की आहार के प्रति अभिरुचि का वर्णन करते हैं; क्योंकि सात्त्विक वृत्ति का मनुष्य कोई भी कार्य तब ही करता है, जब वह उससे प्राप्त परिणाम के प्रति निश्चिंत होता है। उसके लिए किया गया कार्य इन सारे पक्षों पर चिंतन-मनन करके करना ही उत्तम होता है।

राजसिक वृत्ति वाले मनुष्य के लिए यह विपरीत होता है—वह भोजन करने के बाद विचार करता है; क्योंकि उसकी वृत्ति वैसी ही होती है। इसीलिए ध्यान से देखें तो हम पाएँगे कि सात्त्विक वृत्ति वाले मनुष्य का वर्णन करते समय भगवान कृष्ण पहले भोजन का फल बताते हैं, फिर उन भोज्य पदार्थों का वर्णन करते हैं, क्योंकि वैसी वृत्ति वाला व्यक्ति उसी दृष्टिकोण के आहार को ग्रहण करेगा।

राजसिक आहार लेने वाले व्यक्ति के विषय में बोलते समय भगवान पहले भोज्य पदार्थों का वर्णन करते हैं और तब उनके परिणाम बताते हैं; क्योंकि राजसिक वृत्ति वाले मनुष्य के द्वारा परिणाम पर विचार, कार्य कर लेने के बाद ही किया जाता है।

इसके विपरीत तामसिक वृत्ति वाले मनुष्य के विषय में कहते समय भगवान किए जाने वाले भोजन के परिणाम के विषय में कुछ कहते ही नहीं; क्योंकि ऐसा मनुष्य लिए जाने वाले भोजन पर भी विचार नहीं करता तो उसके लिए उसके परिणाम पर विचार कर पाना तो कभी संभव ही नहीं है।

यहाँ यदि इन वचनों की और गंभीर विवेचना करें तो हम पाएँगे कि श्रीभगवान मात्र ऐसी वृत्ति वाले मनुष्यों की व्याख्या नहीं कर रहे, वरन वे अर्जुन को स्वास्थ्य के मूलभूत सूत्रों से भी परिचित करा रहे हैं। आज अनेकों वैज्ञानिक शोधों ने इस शाश्वत सत्य और भगवद्वचन को सत्य सिद्ध कर दिया है कि सात्त्विक आहार मनुष्य की जीवनीशक्ति एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाते हैं।

अत्यधिक नमक की मात्रा को भोजन में रखने से उच्च रक्तचाप होता है और अत्यधिक मीठा-मधुमेह को जन्म देता है—यह सत्य तो आज छोटा-सा बच्चा भी जानता है। इसके अतिरिक्त उपवास के जो प्रभाव मनुष्य पर पड़ते हैं, उनका वर्णन करने से जापानी वैज्ञानिक योशीनोरी ओशुमी को नोबुल पुरस्कार मिला था, यह एक सर्वविदित सत्य है।

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण वही सत्य अर्जुन को बताते हुए कहते हैं कि सात्त्विक आहार वो हैं—जिनको ग्रहण करने से '**आयुः**' अर्थात आयु, '**सत्त्वम्**' अर्थात

सतोगुण, '**बलम्**' अर्थात शक्ति, '**आरोग्यम्**' अर्थात आरोग्य, '**सुखम्**' अर्थात सुख एवं '**प्रीतिविवर्धनाः**' अर्थात प्रीतिकर भावना में वृद्धि होती है।

वे उनका और विवरण भी देते हैं कि ऐसे पदार्थ गरिष्ठ नहीं होते, सुपाच्य होते हैं, फेफड़ों और हृदय को शक्ति देने वाले होते हैं और भोजन के ऐसे पदार्थ ही सात्त्विक मनुष्य की अभिरुचि के अनुरूप होते हैं।

इसी प्रकार '**कटु**' अर्थात कड़ुए, '**अम्ल**' अर्थात अम्लीय, '**लवणम्**' अर्थात बहुत नमकीन, '**अत्युष्णम्**' अर्थात ज्यादा गरम, '**तीक्ष्णम्**' अर्थात तीखे, '**रूक्षम्**' अर्थात रूखे एवं '**विदाहिनः**' अर्थात दाहकारक पदार्थ राजसिक वृत्ति वाले मनुष्यों को रुचिकर लगते हैं।

इसी के साथ श्रीभगवान उनके परिणाम भी बताते हुए कहते हैं कि ऐसे पदार्थों को लेने से व्यक्ति को दुःख, शोक और रोग प्राप्त होते हैं।

आज इस सार्वभौम सत्य को भला कौन नहीं जानता? इसी क्रम में भगवान, अर्जुन को बताते हैं कि अधपके (**यातयामम्**), नीरस (**गतरसम्**), दुर्गंधयुक्त (**पूति**) जैसे मदिरा, लहसुन आदि, बासी (**पर्युषितम्**), जूठे (**उच्छिष्टम्**), अपवित्र (**अमेध्यम्**) जैसे मांस इत्यादि शास्त्रनिषिद्ध भोज्य पदार्थ उनको प्रिय हैं, जिनकी प्रवृत्ति तामसिक होती है।

यहाँ भगवान भोज्य पदार्थों का वर्णन नहीं कर रहे, बल्कि उनको जिस रुचि एवं वृत्ति के साथ ग्रहण किया गया है, उसका वर्णन कर रहे हैं। सार रूप में यदि सात्त्विक भोजन भी राजसिक भाव से लिया जाए, लोलुपतावश, कुटिलतावश लिया जाए तो परिणाम राजसिक या तामसिक ही आएगा। यहाँ इस सारांश को समझना अत्यंत अनिवार्य हो जाता है।

(क्रमशः)

एक वृद्धा थी, उसके कोई संतान न थी। उसके पास अपार धन-संपत्ति थी और उसने जीवन भर धन का सदुपयोग ही किया था। अंत समय में स्वर्ग से दूत उस महिला को लेने पहुँचे तो उन्होंने कहा—''चलिए आपको स्वर्ग ले चलना है।'' यह सुनकर उस वृद्धा के मन में लोभ जागा और वह देवदूतों से बोली—''मुझे कुछ आवश्यक कार्य हैं, इसलिए कुछ समय दे दीजिए।'' दूत उसको एक वर्ष का समय देकर चले गए। इस बार उस महिला ने कर्ज पर रुपया देकर सूद और ब्याज लेना आरंभ कर दिया। लालच बढ़ा तो चोरी, फरेब, झूठ जैसे दुर्गुण स्वभाव का अंग बन गए। देखते-देखते एक वर्ष व्यतीत हो गया। इस बार उसे लेने यमदूत पहुँचे और बोले—''चलो, नरक चलने का समय हो गया।'' वो महिला बोली—''पर एक वर्ष पूर्व तो मुझे स्वर्ग ले जाया जा रहा था, फिर यह परिवर्तन कैसे?'' यमदूत बोले—''माई! तुमने जीवन भर जितने पुण्य किए थे, एक वर्ष में उससे ज्यादा पाप कर डाले।'' मनुष्य को इसलिए विवेकपूर्ण जीवन जीते हुए कर्म करने चाहिए।

विश्व को भारतीय संस्कृति की देन

भारतीय संस्कृति ने विश्व को अनगिनत अनुदानों से अनुप्राणित किया है। भारतीय संस्कृति का मूल उसकी बौद्धिक एवं रचनात्मक क्षमता है। इस वजह से इसका व्यवहार एक जीवंत व्यवस्था की भाँति रहा है। समय-समय पर इसने आत्मचिंतन के माध्यम से स्वयं को परिष्कृत किया है। यही तत्त्व हमारे राष्ट्र व हमारी राष्ट्रीयता को समृद्ध बनाता है।

राष्ट्र सर्वोपरि है। राष्ट्र के संवर्द्धन, पोषण एवं संरक्षण का दायित्व प्रत्येक नागरिक का होता है। भारतीय राष्ट्र की कल्पना राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकार के दायरे तक में सीमित नहीं है। यह नितांत सांस्कृतिक है। हमारी सभ्यता एवं समाज शाश्वत एवं सनातन हैं। संस्कृति के बिना हम किसी भी प्रकार की कोई मर्यादा प्रतिपादित नहीं कर सकते हैं। सांस्कृतिक तत्त्वों को अलग-अलग करके देखा जाना असंभव है।

भारत के राष्ट्रीय एकात्म को मजबूत करने में एकमात्र भूमिका भारतीय संस्कृति ने निभाई है एवं यह आगे भी निभाती रहेगी। अन्य देशों की सभ्यता की जड़ों में विशाल कालखंड से मिलने वाली पुष्टता नहीं होती है। इस देश की सांस्कृतिक धरोहर अत्यंत पुरानी है। सभी धर्मों के उद्‌गम समय को एकीकृत कर दिया जाए तो भी यहाँ की सांस्कृतिक विरासत के समूचे काल की गणना से तुलना संभव नहीं है।

भारतीय संस्कृति अत्यंत समृद्ध है। इसकी समरसता अद्‌भुत है। जब दुनिया की दूसरी सभ्यताएँ अपनी बाल्यावस्था में थीं तब भारतीय समाज अपने चिरयौवन में देदीप्यमान हो रहा था।

भारतीय संस्कृति इस सृष्टि की एकमात्र संस्कृति थी, जिसने सदा अपना यौवन काल ही देखा। समूची दुनिया के अंधकार को देदीप्यमान करने की क्षमता रखने वाली इस संस्कृति ने अपसंस्कृतियों के दौर में भी अपनी ओजस्विता को बरकरार रखा।

संस्कृति की सरिता का पाट इतना विस्तृत होता है कि उसमें विभिन्न धर्मों की धाराएँ एक साथ समाहित हो जाती हैं, लेकिन नदी के मौलिक स्वरूप में परिवर्तन की संभावनाएँ अल्प या नगण्य होती हैं।

मानव सभ्यता में अपसंस्कृति की कल्पना दुसह्य है। संकीर्ण विचारधारा ने हमेशा इसे आगे रखने की कोशिश की है, लेकिन इस देश की मिट्‌टी ने उन्हें स्थान नहीं दिया। इतिहास के पन्ने पलटें तो पाएँगे कि भारतीय समाज उस वक्त भी बेजोड़ था जब यूनानी, हूण, अरब, मंगोल, मुगलों ने हमारे देश की ओर रुख किया था।

भारतीय समाज ने लंबे समय तक विदेशी आक्रांताओं के आघात को सहा है। यह सहिष्णुता एवं सहनशीलता हमारा आधार है। इसी ज्ञान एवं शक्ति से समूची दुनिया प्रकाशमान हो रही थी। कोई भी विदेशी आक्रमण भारतीय समाज पर इसलिए नहीं हुआ कि उसे यहाँ अपनी कोई स्थायी पहचान छोड़नी थी।

विदेशी आक्रांताओं को लगा कि वे इस देश को लूट रहे हैं, लेकिन यहाँ से जाते-जाते वे थोड़े

सांस्कृतिक विचारों को भी अपने साथ ले गए थे। बाद में इस दुनिया ने ऐसे धर्मों का उद्भव भी देखा, जिनका मूल उस देश में नहीं था।

भारतीय संस्कृति की सुगंधित कोपलों की महक से संसार अछूता नहीं रहा। वर्तमान ही कल का इतिहास बनता है। भारतवर्ष में राष्ट्रीयता भी संस्कृति की कोख से ही उत्पन्न हुई थी। इसके उन्नायक समय-समय पर विभिन्न धार्मिक व्यक्तित्व हुए। महात्मा गांधी की राम के प्रति आस्था से यहाँ के लोग भली भाँति परिचित हैं।

भगवान राम के बिना गांधी जी के व्यक्तित्व का निरूपण नहीं किया जा सकता है। वे इस देश की बौद्धिक एवं आध्यात्मिक ऊर्जा हैं, जिसके संचार से यहाँ का प्रत्येक नागरिक ओत-प्रोत है, फिर वह चाहे किसी भी धर्म या संप्रदाय का हो। जिसने भी अपने देश में अन्यायपूर्ण ढंग से सत्ता स्थापित करने की कोशिश की है उनका एक दिन अंत हुआ है।

सुनहरे भविष्य का निर्माण सदैव गौरवमय अतीत की नींव पर होता है। भारत का अतीत बेहद गौरवशाली रहा है। इसलिए इसके प्रकाशमान भविष्य पर किसी को संदेह नहीं है। राम और कृष्ण इसी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं।

पिछले दो दशकों में भारतीय समाज ने कई बड़े सांस्कृतिक एवं राजनीतिक आंदोलन देखे हैं। हमेशा की तरह भारतीय समाज में बदलाव की बयार को एक स्थान मिला है।

इस देश में कोई भी आंदोलन विशुद्ध रूप से राजनीतिक नहीं रहा है। इसके कारण भी भारतीय संस्कृति में छिपे हुए हैं। हम सबको प्रतीक्षा उस दिन की है, जब भारतीय संस्कृति के उन्नायक बौद्धिक विचारों वाले महात्मा बुद्ध, गांधी, विवेकानंद की महती भावनाओं से देश का कण-कण सिंचित हो।

भारतीय संस्कृति का आधार आध्यात्मिक है। अध्यात्म हमारे अस्तित्व एवं भावनाओं से संबंधित है। यह चिरंतन और शाश्वत है। इसके विचार कालजयी हैं। यह परिस्थितिवश धूमिल तो हो सकता है, परंतु विनष्ट नहीं हो सकता है। इसी कारण अतीत के संघर्ष में यह स्वयं को जीवंत रखता है।

इसी संस्कृति से ओत-प्रोत अपना राष्ट्र समस्त विश्व को अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करेगा। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त 21वीं सदी उज्ज्वल भविष्य की संकल्पना का आधार भी यही है। अत: हमें स्वयं को इस चुनौती के लिए सदा तत्पर रखना चाहिए। ❑

राहगीर ने राह में गड़े मील के पत्थर की ओर देखा और ताना दिया—''भला तुम्हारा जीवन भी कोई जीवन है, जो एक ही जगह स्थिर है। मुझे देखो, मैं सारी दुनिया के भ्रमण का आनंद लेता हूँ और तुम हो कि एक जगह गड़ गए तो हिलने का नाम नहीं लेते हो।'' मील का पत्थर हँसा और बोला—''मित्र! पेंडुलम हिलता-डुलता तो बहुत है, पर पहुँचता कहीं नहीं, वैसे ही उद्देश्यविहीन भ्रमण किसी काम का नहीं। मैं एक उद्देश्य के लिए समर्पित हूँ और इसीलिए दूसरों को दिशा दे पाता हूँ, चाहे स्वयं कहीं न जाऊँ।''

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी-2

संत के अनुयायी हैं हम

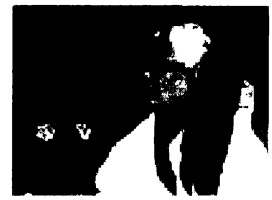

[गतांक से आगे]

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि उनके शब्द हमारे अंत:करण को झकझोरते भी हैं और हृदय को संवेदित भी करते हैं। अपने ऐसे ही एक प्रस्तुत उद्बोधन में वे प्रत्येक गायत्री परिजन को स्मरण दिलाती हैं कि हम लोग पूज्य गुरुदेव जैसे संत के अनुयायी हैं और उनके निर्दिष्ट पथ पर बढ़ते समय न हमें परिवार की चिंता करने की आवश्यकता है और न सामाजिक विडंबनाओं के आगे झुकने की जरूरत है। वे कहती हैं कि हमें प्रतिकूलताओं से घबराने की आवश्यकता नहीं है, वरन पूरे साहस के साथ उनसे लोहा लेने की आवश्यकता है। वंदनीया माताजी पूज्य गुरुदेव का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि उनसे प्रेरणा लेकर हमें देवताओं की तरह जीवन जीने की आवश्यकता है। हमें भाईचारे से रहने की जरूरत है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

संत के अनुयायी हैं आप

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

बेटियो, आत्मीय प्रज्ञा परिजनो!

भगवान ने जो हमें यह बहुमूल्य जीवन दिया है, उसको सार्थक बनाने के लिए हमें संत का जीवन जीना है। आप एक संत के अनुयायी हैं। गुरुजी के शिष्य हैं, तो गुरुजी के पदचिह्नों पर आपको चलना ही चाहिए। नहीं, हम कैसे चलें? माताजी! मुझे तो जुकाम हो जाता है, हाँ, यह तो आप सही कह रहे हैं। जुकाम तो देखो, इतने हिस्से में होता है। नाक में हो रहा है कि पाँव में हो रहा है और सिर में हो रहा है।

बस, इतनी जगह में जुकाम हो रहा है। नहीं साहब! अगर हम कुछ करते हैं, तो हमारी जो औरतें हैं, वे हमें कहीं जाने नहीं देतीं। साहब! मेरा मर्द मुझे कहीं नहीं जाने देता। मर्द बड़ा शासन करने वाला है। नहीं, कोई शासन नहीं करेगा बेटियों पर।

आप गुरुजी-माताजी के बेटे हैं। पत्नी कौन है? हमारी बेटी है। हमारी बेटी के ऊपर आप गुलामों जैसा शासन करेंगे? हम गुलामों जैसा शासन नहीं करने देंगे, किसी को भी नहीं करने देंगे, वे गुलाम नहीं हैं, वे हमारी बेटी हैं। हमारी बेटी हैं वे, तो जो अधिकार तुम्हें दिया गया है, वह इन्हें भी दिया गया है।

इनको आगे बढ़ने दीजिए। इनकी पीठ थपथपाइए; ताकि वे आपके समतुल्य होती हुई चली

जाएँ, उपकार करती हुई चली जाएँ। हमको बिलकुल मंजूर नहीं है, यहाँ जो लड़के और लड़की कहते रहते हैं कि हमारी परिस्थितियाँ नहीं हैं। इसी तरह से मीरा ने एक बार तुलसीदास जी को पत्र लिखा था।

उसमें यह कहा कि आप मेरा मार्गदर्शन करिए मैं किस तरीके से अपने गृहस्थ जीवन से लोहा ले सकूँ? क्योंकि मुझे भगवान को स्मरण नहीं करने दिया जाता है।

तुलसीदास जी का जीवनदर्शन

तो उन्होंने एक कविता लिखकर मीरा के पास भेज दिया; क्योंकि वे तो कवि थे। उसका भावार्थ यह है कि देखो किसी के मन पर किसी का अधिकार नहीं होता। शरीर पर तो अधिकार हो सकता है, मन पर नहीं हो सकता।

हम भगवान को सदा स्मरण करें, तो क्या कोई रोकेगा? अच्छे कार्य के लिए आगे बढ़ें तो क्या कोई रोकेगा अथवा रोक सकता है? बिलकुल नहीं रोक सकता, यह तो कहने की बात है। उस कविता में उन्होंने कहा—

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भए मुद मंगलकारी॥

उन्होंने सारा-का-सारा संसार; जीवनदर्शन एक कविता में उड़ेलकर रख दिया। मीरा घबराती है। तू घबरा नहीं। हिम्मत से काम ले। जो कदम आगे उठाया है, उसे पीछे न हटा, लोक-मंगल के लिए हमें यदि कुरबानी देनी हो, तो देंगे ही, उससे कौन डरता है? देखा जाएगा ठीक है।

गुरुजी पर विश्वास रखें

घरवाले खुशामद करें कि तू मेरा भगवान है, देवता है। देवता, यह कहाँ होता है? पर भगवान हमारे ऊपर ही चढ़ता आए, तो यह भी कोई बात हुई। पूरा सम्मान करेंगे, पर जब गलत चलेगा, तो उसे समझाएँगे, मिन्नतें भी करेंगे।

कहेंगे, यह रास्ता गलत है। आप इस रास्ते से नहीं चलिए और कैसे भी न माने तो, है तो भाई वह हमारा भगवान। पर एक साधक के तरीके से अपनी मौन साधना कीजिए, उसको कोई नहीं रोक सकता।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनके एक निकटवर्ती गृहस्थ भक्त ने पूछा—"महाराज! सच्चे ब्राह्मण के क्या लक्षण होते हैं?"

अपने भक्त की जिज्ञासा का समाधान करते वे कहने लगे—"देखो! सच्चे ब्राह्मण पके चावल जैसे कोमल, स्वादिष्ट हो जाते हैं और समूह में रहते हुए भी अपनी सत्ता को अन्यों के साथ चिपकने नहीं देते।"

मैं आपसे निवेदन करूँगी कि मैंने चौपाई के माध्यम से समझाने की कोशिश की है कि गुरुजी ने यह कहा कि हर औरत को आज संकल्प लेना चाहिए कि जीवनपर्यंत तक जो ज्योति जलाई जा रही है, हमें घी का काम करना है, बाती का काम करना है; ताकि यह बुझे नहीं और प्रज्वलित होती हुई चली जाए और हम इसको जलाते हुए चले जाएँ।

गुरुजी को विश्वास दिलाते हुए हम शपथ ले रहे हैं कि आपकी आज्ञानुसार हमारा हर कदम आगे बढ़ता हुआ चला जाएगा, बगैर किसी विरोध के; हमें किसी की परवाह है ही नहीं। हर सुधारक, हर संत के सामने कठिनाइयाँ तो आती ही रही हैं। यहाँ तक आती रही हैं कि उनको अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, जैसे गांधी जी। गांधी जी को गोली मार दी गई, सुकरात को जहर दिया गया, स्वामी श्रद्धानंद को गोली मार दी गई, दयानंद को जहर पिलाया गया।

प्रतिकूलताओं से घबराएँ नहीं

अरे, किन-किन का कहें कि किसको सामना नहीं करना पड़ा प्रतिकूलताओं का? मरना तो एक दिन है ही। देखा जाएगा, यदि किसी के भाग्य में ऐसा ही है, तो ऐसा भी देखा जाएगा। शहीद की तरह से मरना चाहिए। कायरों की तरह से नहीं, गीदड़ों के तरीके से नहीं।

साहसियों के तरीके से, जिस तरीके से एक फौजी होता है, फौजी कमांडर आगे-आगे चलता है। देखा जाएगा? गोलियाँ चल रही हैं, तो क्या हमारे हिस्से की होंगी तो लग जाएँगी और नहीं तो जिंदा तो बच ही जाएँगे।

कौन परवाह करता है उस समय? जो मान और इज्जत अपने राष्ट्र की बचानी है, तो हम उसके लिए कुरबानी देंगे। हमारे में जो त्याग के भाव होंगे, वे सारे राष्ट्र के लिए समर्पित होंगे। वे ही राष्ट्र को बचाएँगे।

आपको नहीं मालूम किस-किस तरीके से हमारे अंदर जो विकृतियाँ हैं, वे हमें हैरान किए दे रही हैं। अभी बाहर की ही चैन नहीं लेने देतीं और हमारे ही घर में आग लगती चली जा रही है। इस आग पर पानी कौन डालेगा? यदि पड़ोस में आग लगेगी, तो प्रभावित आप भी होंगे। ऐसा कभी नहीं हो सकता, आग लग रही हो और प्रभावित न हों।

ज्ञानी, ज्ञान से विकृतियाँ काटें

तो साहब! इसका उपाय क्या है? एक-एक पानी की बालटी लेकर पहुँच जाएँ? नहीं बेटे! इस पानी की आवश्यकता नहीं है। एक और पानी है। कौन-सा है? वह है प्यार, वह है स्नोत, वह है सिद्धांत, वह है सद्ज्ञान; क्योंकि अज्ञानतावश जितनी भी विकृतियाँ पैदा होती हैं, उनको हटाने का कार्य ज्ञानी ही कर सकता है; क्योंकि अज्ञानी तो रोकर काटता है और ज्ञानी उसे ज्ञान से काटता है।

ज्ञान से जो जिंदगी कटती है, वह दूसरों को प्रभावित करती हुई चली जाती है। अन्यों का भी ज्ञान बढ़ाती हुई चली जाती है। तो आप ज्ञानियों की श्रेणी में आना। अज्ञानियों की श्रेणी में मत आना।

आपके, हमारे गुरुजी बड़े हिम्मतवाले थे। हमेशा कहा करते थे, अरे मौत का क्या डर है? कोई डर नहीं है, मैं तो अपने आप बुला रहा हूँ; क्योंकि मुझे तो इस ब्रह्मांड में समा जाना है। अभी तो मैं सीमाबद्ध हूँ। शरीर की आवश्यकताएँ होती हैं। शरीर को देखना पड़ता है।

यह जीवात्मा है, तो कभी इस पर झुंझलाहट भी आती है कि क्या है, यह शरीर का बंधन? जब सूक्ष्म में मिल जाते हैं, तो कुछ नहीं होता। न कोई शरीर की आवश्यकता है, न किसी चोले की। केवल एक ही है सारे विश्व में छा जाना। आज जो परिस्थितियाँ विपन्न हो गई हैं कि शरीर त्याग का क्या मतलब है? शायद उनने कोई ऐसा कदम उठाया हो; ताकि उन्हें अपनी जीवनलीला समाप्त करनी पड़े।

गुरुदेव का निर्णय

नहीं बेटे! उनका यह तीन साल पहले से लिया गया निर्णय था। उनको आभास भी था।

उन्होंने कई बार मुझसे कहा था। सूक्ष्मीकरण के दौरान कहा था कि देखो, मुझे पाँच साल केवल मार्गदर्शन के मिले हैं, वह पूरा होते ही मैं चला जाऊँगा।

उनने दो साल पहले कहा था कि अब जाने का समय आ गया। क्यों कहा करते हैं, यह मैंने उनसे कहा? मुझे बहुत बुरा लगता है। मुझे बहुत असहनीय लगता है। मैं वेदना को सह नहीं सकूँगी, मेरे सामने मत कहिए।

उन्होंने कहा—मैं तुम्हें सुनने को मजबूर कर रहा हूँ। बात जो मैं कह रहा हूँ, वह सामने है। जो परिस्थितियाँ आएँगी, उनका तुम मुकाबला कर सको, इसलिए मुझे बार-बार कहना पड़ रहा है। उन्होंने कहा कि देखो इस मिशन पर जवानी आती जा रही है।

पहले यह बच्चा था, अब यह जवान होता हुआ चला जा रहा है, इतने बच्चे-इतने बच्चे हैं। मुझे और दस साल मिल जाते, तो हम दोनों न जाने क्या-से-क्या कर देते? किंतु यह सब हमारी सूक्ष्मसत्ता द्वारा ही होगा।

बेटे! मात्र तीन साल पहले की बात बता रही हूँ आपको। मैंने उनसे कहा कि मेरा तो भारी शरीर है। घुटनों में भी थोड़ी-सी जकड़न रहती है, पर आपको तो कोई रोग नहीं है, फिर ऐसा क्यों कहते हैं? मत कहिए। मुझे जाने दीजिए न। यह तीन साल पहले की बात बता रही हूँ, उनकी अपनी इच्छानुसार ही, जो कुछ हुआ, सब उनकी इच्छानुसार हुआ।

यह भी तय हुआ कि हमारे शरीर को शांतिकुंज से बाहर नहीं ले जाना चाहिए। यह हमारे दोनों का ही तय किया हुआ था। अब नहीं है उनका शरीर। इसलिए राज आपको बताए दे रही हूँ, जो कि प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा उन्होंने बनाई थी, उन्होंने कहा कि ये देखो, तुम मेरी धर्मपत्नी हो लेकिन दूसरे स्वरूप में तुममें माँ को देखता हूँ। जैसे माँ का स्वरूप होता है, वैसा ही मुझे दिखाई देता है और चाहता हूँ कि हमारा और तुम्हारा यह स्मारक बना दिया जाए। यह उनने कहा—बेटा! बहुत पहले 1983 में कह दिया था।

प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा

उन्होंने लड़कों से कहा कि जब हमारा शरीर छूटे, तो तुम यहीं जो हमने प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा बनाई है, वहीं हम दोनों का दाह संस्कार करना। उनकी वही इच्छा थी, वही किया गया है। न जाने यह प्रसंग कैसे आ गया? दिमाग में आ जाता है, तो वह निकल जाता है, इससे आपको कोई ताल्लुक है? नहीं है।

इससे एक ही ताल्लुक है कि आप उनसे नसीहत लें। उनसे प्रेरणा लें कि सारे विश्व के लिए उनने अपने अंदर कितनी तड़पन देखी और उन्होंने समाज सुधार के जो वह कदम उठाए, आप उन्हें बाँधते हुए चले जा रहे हैं। तोड़ना

बिजली कड़ककर तपस्या करते योगी से बोली—"ऐ साधु! अभी मैं तुझ पर गिर पड़ूँ तो तेरा क्या होगा?" साधु बोला—"यह शरीर नष्ट होगा और शेष तुम भी न रहोगी, परंतु मैं तो पुनः जन्म लेकर तपस्यारत हो जाऊँगा, तुम क्या करोगी?" बिजली निरुत्तर हो गई।

आया। आज कितने ही व्यक्ति ईसाई धर्म में दीक्षित हो गए, कितने क्या बन गए?

मनुष्य बनेंगे नहीं तो क्या करेंगे? मनुष्य प्यार का भूखा है। जहाँ उसको प्यार है, वहीं उसकी गोद में चला जाता है। आप प्यार पैदा करिए; ताकि हर इनसान देशभक्त, समाजसेवी बन सके। आग जो फैली हुई है, त्रुटियाँ हैं, जो कमियाँ हैं उनको सहज तरीके से निकाल करके, उसे प्यार से पीठ थपथपा करके ठीक करिए।

एक तो होता है डाँटना, उसका विरोध करना, उससे नफरत करना। नहीं, हमें नफरत नहीं करना है। श्रद्धानंद का एक छोटा-सा उदाहरण सुनाकर थोड़ी देर में बंद करने वाली हूँ। स्वामी श्रद्धानंद, जिनका नाम पहले मुंशीराम था। जैसा होता है आम लड़कों में, उनमें भी बुराइयाँ थीं। उनकी जो पत्नी थी, वह बड़ी श्रद्धालु थी, विवेकशील थी। विवेकशील व्यक्ति हर कठिनाइयों का सामना करता हुआ चला जाता है।

भाईचारे से रहें

मैं समर्पण की बात कह रही थी कि वे एक रोज शराब पीकर आए। आते ही पत्नी के ऊपर उलटी हो गई, तो उसने उन्हें नहलाया, धुलाया, सुलाया। उनने देखा कि अँगीठी में आग जल रही थी। आटा मढ़ा हुआ रखा था। उनने कहा क्या आज खाना नहीं बना? कहा—नहीं, और दिन तो आप खा लेते थे, पर आज आपने नहीं खाया; क्योंकि आप नशे में थे। तुमने भोजन नहीं किया, तो मैंने भी नहीं किया।

उन्होंने कहा—जो हमारे अंदर दुर्गुण हैं, इससे तुम्हारे अंदर कोई नफरत हुई क्या? तो उनने कहा—ऐसा कैसे हो सकता है? आप तो मेरे भगवान हैं। आप जानें-आपका काम जाने। मेरा जो कर्त्तव्य है, वह मैंने याद रक्खा।

तो बेटे! स्वामी श्रद्धानंद जी ने अपने जीवन चरित्र में लिखा है कि मेरी पत्नी, मेरी गुरु है। उसने साहस और उदारता मेरे लिए नहीं बरती होती, धैर्य नहीं रखा होता, तो आज मैं न जाने क्या-से-क्या होता? आर्य समाज का इतना काम किया। पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे, उन्होंने बहुत काम किया। गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

तो मैं आपसे यह नहीं कह रही थी कि वह तरीका है कि बुराई के प्रति क्रोध न जताकर उसकी पीठ थपथपाएँ और कहें यह भैया ठीक नहीं है। देखो यह गलत है। हम और आप एक ही तो हैं, एक ही खून, एक ही मांस सब एक ही है। फिर हम आपस में ऐसे कैसे कह सकते हैं? भाईचारे से रहें, तो क्या हर्ज है? भाईचारे से देवताओं की तरह रहना चाहिए, दैत्यों के तरीके से नहीं। देवता कैसे होते हैं? एक और उदाहरण देकर शायद और स्पष्ट कर दूँ।

कौन हैं देवता?

एक बार ब्रह्मा जी के पास देवता और दानव दोनों ही गए, दोनों बोले—पितामह! आप यह बताइए, इनको प्यार क्यों करते हैं और आप हमको प्यार क्यों नहीं करते? उन्होंने कहा—इस रहस्य को मैं फिर कभी बतलाऊँगा, इस समय नहीं। उन्होंने दावत दी और आमंत्रण दिया, तो भोजन पहले दानवों को परोसा गया। जैसे ही उन्होंने ग्रास उठाया, कोहनियाँ सीधी होकर रह गईं सबकी। किसी का भोजन नहीं हुआ, मक्खियाँ भिनभिनाएँ, भोजन फैला।

उन्होंने कहा कि अब बारी देवताओं की है—देवताओं को बिठाया गया, उन्हें परोसा गया। उनके भी हाथ सीधे रह गए, उनने कहा देखा तो जाए कम-से-कम। उनका जब भोजन करने का नंबर आया, तो सोचा अब क्या करना चाहिए? एक ने

दूसरे के मुँह में दिया, दूसरे ने तीसरे के मुँह में दिया, इसी प्रकार तीसरे ने चौथे, चौथे ने पाँचवें के। इस तरीके से सभी ने तृप्त होकर के भोजन किया। क्या मजाल कि गंदगी हो जाए? क्या मजाल कि फैल जाए? उसमें उन दानवों का स्वार्थ था। इन देवताओं का भाव निस्स्वार्थ था।

देवताओं ने सोचा—जब अपने मुँह की ओर हाथ नहीं जाता, तो क्यों न दूसरे के मुँह की ओर हाथ करें; ताकि सभी को मिल सके। हमें देवताओं की तरह जीवन जीना है, दूसरों के अंदर भी देवत्व पैदा करना है, जो कि गुरुजी ने बीड़ा उठाया था।

धरती पर देवत्व का उदय करना, हर व्यक्ति में देवत्व का उदय करना, उसके अंदर का देवता, चेहरे पर छलकता हुआ दिखाई पड़े, उसकी क्रिया में दिखाई पड़े, यही गुरुजी ने जीवन भर किया। केवल भावना ही नहीं, आप सब उसे यथार्थ में लाइए, अपनी उपासना को व्यावहारिक रूप दीजिए। व्यावहारिक रूप जब देंगे, तो आप इस तरीके से पवित्र और निर्मल हो जाएँगे, जैसे संत कबीर ने कहा है—

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे-पाछे हरि फिरत, कहत कबीर-कबीर॥

भगवान पीछे-पीछे कबीर-कबीर कहता हुआ फिरता है। किसके लिए? कबीर के लिए। साधारण के लिए नहीं, उसको क्यों कहेगा? क्योंकि उसका भगवान, उसका ईमान, उसके साथ है और सारे विश्व में चेतना को वह देखता है।

गुरुजी ने देखा भगवान

गुरुजी ने कण-कण में भगवान को देखा। सारे जर्रे-जर्रे में उनको भगवान दिखाई पड़ता था, हर मानव के रूप में। उन्होंने कहा—भगवान है तो, किंतु यह गर्त में गिरा हुआ है। इसके ऊपर जो कल्मष और कषाय की परत चढ़ी हुई है, जिस तरीके से अंगार पर परत चढ़ जाती है राख की, कंडे की आग, आपने देखी होगी, उस पर एक परत लग जाती है। दहकते हुए अँगारे पर उसकी जो गरमी होती है, वह ढक जाती है, तो वह किसी काम की नहीं होती। जब परत को हटा देते हैं, तो वह जलता हुआ अंगार रूप होता है।

उन्होंने कहा कि इसके अंदर जो मलिनता है, जो क्षुद्रता है, इनको निकाल करके, इनको नवजीवन प्रेरणा देना है, अभी तो ये मुरदा की श्रेणी में हैं। ऐसा मत कहिए। तो मैं आलसी और प्रमादी कह दूँगी, आपको यदि मुरदा शब्द बुरा लगता है, पर उन्होंने कहा—मिट्टी की मूर्ति में फिर से नई जान डालनी है।

एक नई लहर पैदा करनी है और सारे विश्व को बदलने की प्रेरणा प्रवाहित करनी है। हमने यह बीड़ा उठाया है। हम विश्व को बदलने की हिम्मत रखते हैं, होगा कि नहीं, हमें नहीं मालूम? पर हिम्मत तो रखते हैं और जब हम हिम्मत रखते हैं, तो बगैर किसी की परवाह किए कुछ-न-कुछ कर ही डालेंगे।

गंगा की तरह बनें

बेटे! आपको बहुत कुछ उदाहरण दिए—मीरा का, तुलसीदास जी का, कबीर का दिया है, अन्य अनेकों का दिया। गंगा का दिया, अनवरत बहती चली जाती है, गंगास्नान करने जाते हैं। बहुत अच्छी बात है, अपना मैल उतारकर, छोड़कर आ रहे हैं। अरे गंगा जी जैसे बनो—निर्मल, पवित्र, शीतल। गंगा अनवरत बहती रहती है। हमारा जीवन क्या है? यह सोचें। हम जनसेवा के लिए व्रत लें। जिस तरीके से माँ गंगा बहती चली जाती है, क्या हमारा जीवन ऐसा है?

हम अनेक रूपों में बहते हुए इस तरीके से जनमानस को उठाएँ कि उसके लिए हमारी हजार भुजाएँ हो जाएँ। हजार भुजा काम करें, हमारे अंदर जिस दिन यह साहस पैदा हो जाएगा, तो फिर दुनिया में कोई ऐसा नहीं है, जो हमें रोक सकता हो। क्यों रोकेगा ? कल मैंने उदाहरण दिया। क्या है साहब ! आज मंगल है, बड़ी अच्छी बात है, मंगल है, तो मेरा उपवास है, आज हनुमान जी का व्रत है।

यह बताइए इस दिन आप क्या-क्या संकल्प लेते हैं ? आगे आने वाले समय में क्या करते हैं ? हनुमान जी ने सीता माता को लाने का शक्ति भर प्रयास किया था। जब भगवान राम से जुड़ गए, तो इतना पराक्रम आ गया। ऐसा जोश आ गया। जामवंत ने हनुमान जी की शक्ति को ललकारा। कहा— बुजदिल कहीं के, तेरे अंदर तो इतनी शक्ति है। तो शक्ति का पारावार न रहा और समुद्र में छलाँग लगाई, सुरसा के मुँह से निकले, कभी छोटे, कभी बड़े।

सुरसा माने परिस्थितियाँ। यह समझाने का ढंग है। यह उपाय था, अभिव्यक्त करने का। आपने हनुमान जी की जिंदगी नहीं देखी। आजीवन ब्रह्मचारी रहे और माँ सीता के लिए, नवजीवन देने के लिए, भारतीय संस्कृति को वापस लाने के लिए हमने जरूरत पूरी की है, तभी हम सही माने में हनुमान जी हैं, नहीं, तो हम हैं लकीर-के-फकीर। लकीर पीट ली सिंदूर से निहाल कर आए, ऐसा नहीं हो सकता कि उन हनुमानों के तरीके से, अंगदों के तरीके से, विवेकानंद के तरीके से, उन सिस्टर निवेदिता के तरीके से आप आगे बढ़ें।

हम चाहेंगे कि वे तो एक निवेदिता, एक विवेकानंद हुए थे और आप में से कितने विवेकानंद, कितनी सिस्टर निवेदिता बैठी हैं, जो कुछ भी हम कर लें, वह थोड़ा है। हम चाहेंगे कि हमारे विवेकानंद जन-जन के लिए इस तरीके से खड़े हो जाएँ, जैसे विवेकानंद अमेरिका में गए और वहाँ उनको शून्य पर बोलने को कहा था। उन्होंने कहा जाओ-जाओ गुरु की शक्ति है मेरे अंदर। देखो चमत्कार होता है कि नहीं। शून्यवाद पर बोले। थोड़ा समय दियां था बोलने के लिए, पर घंटों वे बोलते चले गए।

यह मानकर चलिए कि गुरुजी आपके साथ हैं। आपकी परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हों, आपका शरीर गवाही क्यों न दे, चाहे आप अयोग्य ही क्यों न हों, पर हमारे लिए बहुत योग्य हैं; क्योंकि हम योग्य बनाने का दावा जो कर रहे हैं। हम जो वायदा कर रहे हैं, उसे पूरा करेंगे। आप कैसी भी गीली मिट्टी के क्यों न हों, उस मिट्टी को हमें सौंपकर तो देखिए कि माँ यह लो। हम वास्तव में करके दिखाएँगे कि किस तरीके से मानव में देवत्व का उदय होता है। आपको देवता बना करके पृथ्वी पर छोड़ेंगे। आप सारे विश्व में फैल जाएँ; ताकि सारे संसार में देवत्व का उदय हो सके, यही मेरी प्रार्थना है। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करूँगी।

॥ ॐ शांतिः ॥

पथिक फूलों से लदे वृक्ष को देखकर बोला—"तुम तो फल-फूल रहे हो और मैं भूखा मर रहा हूँ। भगवान ने मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया ?"

वृक्ष हँसते हुए बोला—"तुम यदि मेरे पतझड़ के कष्टों को देखते तो अनुभव करते कि ये फूल-फल कितनी कठिन तपश्चर्या से प्राप्त किए हैं। तुम भी वैसा पुरुषार्थ करके देखो, उसी से जीवन में समृद्धि और संतुष्टि आती है।"

अनगिनत गतिविधियों का केंद्र बना विश्वविद्यालय

दिशा के अनुरूप कालांतर में दशा तय हो जाती है। सृष्टि के प्राणिजगत् में मनुष्य के अतिरिक्त प्राय: सभी प्राणियों के लिए निर्धारित कर्मों को भोगना सुनिश्चित होता है और अपनी इस विवशताजन्य अवस्था से छुटकारा पा सकना; प्रकृति के कर्मफल सिद्धांत की अकाट्य व्यवस्था में लगभग असंभव ही है।

प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य भी इस व्यवस्था के अंतर्गत आता है,किंतु बाकियों और उसमें अंतर इस बात का है कि वह इस व्यवस्था का अतिक्रमण करने में समर्थ है। विधाता ने मनुष्य योनि को कुछ इस प्रकार से विशेष बनाया है कि वह उत्थान व पतन की दो राहों के मध्य खड़ा है। ईश्वरप्रदत्त अपनी बौद्धिक क्षमता के सुनियोजन से जहाँ एक ओर उसके दिव्य जीवन का मार्ग प्रशस्त होता है तो दूसरी ही ओर दुरुपयोग से अवनति के द्वार खुलने में देर नहीं लगती।

पूज्य गुरुदेव की यथार्थ संकल्पना देव संस्कृति विश्वविद्यालय उसी दिव्य जीवन की ओर ले जाने वाले मार्ग को प्रशस्त करता है। लगभग दो दशकों की अपनी प्रगति यात्रा में ही इसने अपनी विशिष्ट पहचान से न केवल देशवासियों को अपनी ओर आकर्षित किया है, बल्कि विदेशियों के मध्य भी इसने अपनी अमिट छाप छोड़ी है और यही कारण है कि समय-समय पर अनेकानेक संस्थाएँ इस आध्यात्मिक केंद्र की ओर खिंची चली आती हैं।

पूज्यवर की आध्यात्मिकता की धरोहर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों स्वामी विवेकानंद कल्चरल सेंटर के तहत कजाकिस्तान से ऐगेरिम ऐकेनोवा जी के साथ 13 विद्यार्थियों के समूह का 13 दिवसीय योग एवं आयुर्वेद के पठन-पाठन हेतु आगमन हुआ। विश्वविद्यालय आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की व एशिया के प्रथम बाल्टिक शिक्षा एवं संस्कृति अध्ययन केंद्र का अवलोकन किया।

इस दौरान सभी विद्यार्थियों ने मानव चेतना एवं योग विज्ञान विभाग के साथ मिलकर संबंधित विषयों का अध्ययन भी किया। विशिष्ट लोगों के आगमन के क्रम में केंद्रीय भाजपा समन्वयक और प्रभारी, भाजपा मुख्यालय, नई दिल्ली से श्री नूने बलराज जी का सपरिवार आगमन हुआ। यहाँ उन्होंने प्रतिकुलपति महोदय से भेंटकर परिसर का भ्रमण किया एवं विश्वविद्यालय में चल रही गतिविधियों की सराहना की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में कैंटरेल मिशिगन टेक यूनिवर्सिटी के एसोसिएट डीन विल.एच. जी का आगमन हुआ। अपने आगमन पर उन्होंने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट की। भेंटवार्त्ता के दौरान उन्होंने ए.आई. अनुप्रयोग, पृथ्वी एवं वायुमंडलीय विज्ञान की चुनौतियों को हल करने में कैसे मदद करते हैं तथा शून्य कार्बन फुटप्रिंट के बिना सतत विकास जैसे विषयों पर चर्चा भी की।

जॉर्जिया से प्रसिद्ध जॉर्जियाई अभिनेता टीवी होस्ट व एंकर और 100 साल पुराने विश्वविद्यालय शोटा रुस्तवेली थिएटर तथा फिल्मों में अभिनय के प्रोफेसर के साथ जॉर्जिया से अखमेटेली थिएटर यूनिवर्सिटी निकोलस सलुकुइदेज के ग्रुप का भी विश्वविद्यालय परिसर

में आगमन हुआ। अपने आगमन पर जॉर्जियाई ग्रुप के लोगों ने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट की व साथ ही विश्वविद्यालय में निकोलस सलुकुइदेज मैजिकल सर्कल द्वारा लिखित प्रदर्शन प्रस्तुत किया गया।

लैंगुएज करी ऐप के सह-संस्थापक श्री पुनीत सिंह जी एवं श्रीमती अनीशा ज्योति जी ने विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। इस दौरान श्री पुनीत सिंह जी और श्रीमती अनीशा जी ने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट की। भेंट के दौरान विश्वविद्यालय में चल रही अनूठी गतिविधियों की सराहना की।

विवेक कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बिजनौर के सामाजिक कार्य विषय के अध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने अपने शैक्षणिक भ्रमण के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज का भ्रमण किया व साथ ही प्रतिकुलपति जी से मार्गदर्शन प्राप्त किया।

एडवोकेसी की प्रमुख श्रीमती पारुल महाजन जी का भी विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। इस दौरान उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट की। भेंट के दौरान उन्होंने राष्ट्रीय कौशल के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर चर्चा की, विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण किया एवं चल रही गतिविधियों की सराहना की।

माननीय जे.पी. नड्डा जी की धर्मपत्नी आदरणीया मल्लिका नड्डा जी का भी विश्वविद्यालय परिसर में आगमन हुआ। उन्होंने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट की। विश्वविद्यालय परिसर में स्थित प्रज्ञेश्वर महादेव के मंदिर में रुद्राभिषेक व यज्ञ किया। शांतिकुंज में समाधिस्थल पर जाकर नमन-वंदन किया व श्रद्धेयद्वय से भी सदाचार भेंट संपन्न की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय सदैव से अनेकानेक गतिविधियों का केंद्र रहा है, जिस क्रम में विगत दिनों विश्वविद्यालय परिसर में विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर पर्यटन प्रबंधन विभाग द्वारा विभिन्न सकारात्मक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। विद्यार्थियों में सकारात्मक परिवर्तन हेतु प्रतियोगिता का स्वरूप विश्वविद्यालय एवं मिशन की गरिमा के अनुरूप बनाया गया।

अनुशासन, समय प्रबंधन, कार्यक्रम प्रबंधन, प्रबंधन कुशलता, आत्मीयता, सहयोग, सम्मान जैसे गुणों की अभिवृद्धि विश्व पर्यटन दिवस का मुख्य परिणाम रहा व साथ-ही-साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रतियोगिता शृंखला एवं विश्व पर्यटन दिवस के अवसर पर ऑनलाइन देव संस्कृति अवाड्र्स के अंतर्गत कुल 10 तरह की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया।

इस कार्यक्रम में चित्रकला प्रतियोगिता, रंगोली प्रतियोगिता, स्वरचित कविता लेखन प्रतियोगिता, वेब डिजाइनिंग प्रतियोगिता, निबंध लेखन जैसी कई अन्य प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया गया था।

कार्यक्रम के अंतिम दिन मुख्य अतिथि के रूप में प्रतिकुलपति महोदय पधारे। अपने संबोधन में उन्होंने भारत के पर्यटनस्थलों को और कैसे बेहतर बनाया जाए, इसके लिए विद्यार्थियों को जागरूक किया। इस अवसर पर विभाग के विभागाध्यक्ष समेत सभी स्टाफ सदस्य उपस्थित रहे।

स्वावलंबी भारत अभियान के अंतर्गत उद्यमिता सम्मान समारोह का कार्यक्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रीराम भवन सभागार में आयोजित हुआ। ग्राम प्रबंधन एवं सतत विकास संकाय के अनुभवी आचार्य जिन्होंने स्वावलंबन ग्राम विकास एवं उद्यमिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है—ऐसे वरिष्ठ आचार्यों को उद्यमी प्रोत्साहन सम्मान प्रदान किया गया।

श्री सतीश जी (अखिल भारतीय सह संगठन स्वदेशी जागरण मंच), डॉ. राजीव (क्षेत्र संयोजक उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड स्वदेशी जागरण मंच) एवं श्री राजकुमार जी (भारत अभियान समिति, हरिद्वार) एवं अन्य गणमान्य अतिथियों की उपस्थिति में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने इस कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

श्री सतीश कुमार जी ने स्व-उद्यमिता के क्षेत्र में कार्य करने हेतु युवाओं को प्रेरित किया एवं प्रतिकुलपति जी ने युवाओं को वैश्विक अवसर स्वावलंबन की व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक अवधारणा एवं सफलता की सही परिभाषा के संदर्भ में मार्गदर्शन दिया।

आयोजनों की श्रृंखला में राष्ट्रीय सेवा योजना दिवस विश्वविद्यालय परिसर में पूरे उत्साह के साथ मनाया गया। गांधी जी के शताब्दी वर्ष के दौरान दिनांक—24 सितंबर, 1969 को भारत के तत्कालीन शिक्षा मंत्री डॉ. वी. के. आर. वी. राव ने राष्ट्रीय सेवा योजना को 37 विश्वविद्यालयों में लागू किया था।

उस समय एन.एस.एस. में 40 हजार स्वयंसेवक थे। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र के विकास के साथ-साथ राष्ट्रसेवा के लिए उन्हें जागरूक करना है। स्थापना से लेकर आज तक इसके कैडेट्स की संख्या में कई गुना वृद्धि हुई है और एन.एस.एस. की आधिकारिक वेबसाइट के मुताबिक इस समय देश में 38 लाख स्वयंसेवक हैं।

इस अवसर पर राष्ट्रीय सेवा योजना की यूनिट ने विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन करवाया एवं जागरूकता अभियान चलाया। सायंकालीन वेला में बौद्धिक कार्यक्रम एवं पुरस्कार वितरण किया गया, जिसमें सभी स्वयंसेवकों को विश्वविद्यालय के आदरणीय प्रतिकुलपति महोदय का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

प्रतिकुलपति महोदय ने स्वयंसेवकों को इस वर्ष की थीम 'नशामुक्त उत्तराखंड-संस्कारयुक्त उत्तराखंड' पूरी गंभीरता एवं उत्साह के साथ कार्य करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने आगे बताया कि नशामुक्ति उत्तराखंड ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारत के लिए परम आवश्यक है और गायत्री परिवार पिछले पचास वर्षों से इस हेतु अपने विश्वभर में फैले पाँच हजार से अधिक केंद्रों के माध्यम से कार्यरत है।

कार्यक्रम के अंत में प्रतिकुलपति जी एवं कुलसचिव जी ने प्रतियोगिताओं के विजयी विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया। इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय सेवा योजना की देव संस्कृति विश्वविद्यालय इकाई के समन्वयक एवं सभी कार्यक्रम अधिकारी उपस्थित रहे।

पर्यावरण विज्ञान विभाग द्वारा दिनांक—21 सितंबर, 2022 को 'जीरो एमिशन दिवस' मनाया गया, जिसमें विभाग के ही बच्चों के द्वारा कई प्रकार की रोचक प्रतियोगिताएँ आयोजित की गईं। कार्यक्रम की शुरुआत डॉ0 अरुणेश पाराशर एवं विभाग के अध्यापकों के द्वारा कुलपिता एवं कुलमाता के समक्ष दीप प्रज्वलन के साथ हुई।

इसके बाद बच्चों के द्वारा कार्यक्रम की भूमिका के बारे में बताया गया। इसके बाद स्नातक के बच्चों नें एक क्विज प्रतियोगिता के माध्यम से जीरो एमिशन दिवस के बारे में कुछ रोचक जानकारी दी और बताया कि आजकल कार्बन उत्सर्जन कैसे हमारे पर्यावरण को दूषित कर रहा है।

सभी विद्यार्थियों के द्वारा क्विज प्रतियोगिता के माध्यम से कार्बन फुटप्रिंट को कैसे कम किया जा सकता है एवं इसी से संबंधित एक डॉक्यूमेंट्री के माध्यम से भी कार्बन फुटप्रिंट के बारे में विस्तार से जाना। इस संपूर्ण कार्यक्रम में सभी विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़कर प्रतिभाग किया। इस कार्यक्रम में

विभाग के सभी अध्यापकगण व विद्यार्थी उपस्थित रहे।

भारतमेंगम भारती श्रीकृष्ण स्वीट्स भारतमेंगम भारती, चेन्नई के श्री मुरली द्वारा संकल्पित श्री कृष्णा स्वीट्स, राष्ट्रीय एकता के लिए एक अखिल भारतीय कार्यक्रम, अखिल विश्व गायत्री परिवार के सहयोग से देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित किया गया। यह मेगा प्रोजेक्ट महाकवि सुब्रह्मण्य भारती की 100वीं वर्षगाँठ की याद में आयोजित किया गया।

कार्यक्रम की शुरुआत मानवता के कल्याण के लिए गायत्री यज्ञ के प्रदर्शन के साथ हुई और चेन्नई की श्रीमती के०वी० सुभा, अधिवक्ता और हरिकथा कलाकार द्वारा भारती और दिव्य प्रकाश पर एक विशेष भाषण दिया गया।

उन्होंने भारती के कार्यों से गायत्री मंत्र के सार को प्रस्तुत किया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने भारत की महानता पर बात की और कृष्णा स्वीट्स के श्री मुरली को उनके संदेश को फैलाने के अच्छे काम के लिए अभिनंदन किया।

माननीय न्यायमूर्ति एस० राजेश्वरन लाल न्यायाधीश मद्रास उच्च न्यायालय, श्रीमती मीनाका आईएएस, कलैमामणि श्री मुरली सीएमडी, श्री कृष्णा स्वीट्स ने कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि होने के नाते अपनी इच्छाओं को ऑनलाइन साझा किया। श्री सतीश रामकृष्णन सदस्य वाईएसीडी ने उद्घाटन भाषण दिया।

इस कार्यक्रम में श्रोताओं ने अच्छी तरह से भाग लिया जो गायत्रीसाधक, आंतरिक चेतना पर शोधकर्त्ता और विश्वविद्यालय के छात्र थे। यह परियोजना भारतीय विद्या भवन, चेन्नई केंद्र, तमिल मैट्रिमोनी और वाईएसीडी ट्रस्ट, गोपालपुरम के सहयोग से आयोजित की गई थी। हमारी प्यारी भारती को याद करने के लिए हमारे हाथ मिलाने के मिशन के साथ, यह आयोजन उल्लेखनीय रूप से सफल रहा; क्योंकि इसने भारती के संदेश के माध्यम से श्रोताओं की भावना को छुआ।

सेंटर फॉर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस एंड रिसर्च एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं यूनिवर्सिटी ऑफ पेट्रोलियम एंड एनर्जी स्टडीज देहरादून के मध्य आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के क्षेत्र में शोध एवं शिक्षा के विभिन्न आयामों में परस्पर सहयोग हेतु अनुबंध किया गया। इस अनुबंध के परिणामस्वरूप दोनों विश्वविद्यालयों के माध्यम से नवीनतम तकनीकी के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान तथा शिक्षण को विस्तार मिलेगा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के 40वें ज्ञानदीक्षा समारोह में नवप्रवेशी छात्र-छात्राएँ समाज और राष्ट्रसेवा की ओर अपना पहला कदम बढ़ाते हुए वैदिक सूत्रों में बँधे। विश्वविद्यालय में संचालित 40 विभिन्न विषयों के देश व विदेश के 510 नवप्रवेशी छात्र-छात्राओं को दीक्षित किया गया।

ज्ञानदीक्षा समारोह के मुख्य अतिथि उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी ने कहा—"यह समय बहुमूल्य है। इसे जितना साध लेंगे, उतना ही निखार आएगा। इस विश्वविद्यालय में शिक्षक, विद्यार्थियों का एक साथ मिलकर जो सीखने और सिखाने का काम चल रहा है, वह महत्त्वपूर्ण है। मैं स्वयं अभी राजनीति का एक विद्यार्थी हूँ।"

माननीय मुख्यमंत्री जी ने यह भी कहा—"यह विश्वविद्यालय वटवृक्ष का आकार ले चुका है, जो सभी को प्रकाश देने का कार्य कर रहा है। यहाँ अध्ययन के बाद आप सच्चे और अच्छे मनुष्य बनें। नए भारत, समर्थ भारत, सशक्त भारत के निर्माण में आप सभी का महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।"

इस कार्यक्रम से पूर्व माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी ने वीर शहीदों की याद में बनी शौर्यदीवार पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रद्धेय डॉ० प्रणव पंड्या जी ने समारोह की अध्यक्षता की। ऑनलाइन जुड़कर उन्होंने अपने संबोधन में कहा—''ज्ञानदीक्षा संस्कार विद्यार्थियों को नवजीवन प्रदान करने वाला है। जीवन में आध्यात्मिकता को उतारने का यह श्रेष्ठ अवसर है।''

उन्होंने कहा—''यहाँ पाठ्यक्रम के अलावा जीवन जीने की कला सिखाई जाती है, जो विद्यार्थियों को ऊँचा उठाने में सहायक है व साथ ही कुलाधिपति जी ने यह भी कहा कि संकल्पशक्ति के धनी स्वामी विवेकानंद, अपने आचरण से शिक्षा देने वाले पूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी जैसे कई महापुरुषों को अपना रोल मॉडल बनाने की आवश्यकता है।''

इस कार्यक्रम में कुलपति जी ने स्वागत भाषण दिया। प्रतिकुलपति जी ने ज्ञानदीक्षा की महत्ता बताते हुए कहा—''आज व्यक्ति की नहीं, व्यक्तित्व की जरूरत है; नीति की नहीं, नीयत की आवश्यकता है।'' देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति जी ने पौधा भेंटकर मुख्यमंत्री जी का स्वागत किया।

इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलसचिव, समस्त आचार्यगण, शांतिकुंज परिवार के वरिष्ठ सदस्य तथा देश-विदेश से आए अभिभावकगण एवं जिला प्रशासन के एक वरिष्ठ अधिकारी मौजूद रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को 12वें भारतीय छात्र संसद में अपने वक्तव्य को रखने का मौका मिला। इसमें विद्यार्थी आलोकमणि शर्मा, संजना कविदयाल, हेमनंदन शर्मा का चयन हुआ था।

इनमें से मुख्य कार्यक्रम में छात्र वक्ता के रूप में अपने वक्तव्य को राष्ट्रीय स्तर पर रखने का सौभाग्य हेमनंदन शर्मा और संजना कविदयाल को मिला। छात्र आलोकमणि शर्मा 11 वें भारतीय छात्र संसद के पूर्व छात्र वक्ता रह चुके हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय को गौरवान्वित करने वाले इस अवसर पर प्रतिकुलपति महोदय ने विद्यार्थियों से मिलकर उनका उत्साहवर्द्धन किया। विदित हो कि भारतीय छात्र संसद एम०आई०टी० पुणे, महाराष्ट्र द्वारा आयोजित की जाने वाली अब तक की सबसे बड़ी युवा छात्र संसद है, जिसमें भारत के 420 से ज्यादा विश्वविद्यालयों से लगभग दस हजार विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रतिभाग करते हैं। इस तरह देव संस्कृति विश्वविद्यालय अनेकानेक गतिविधियों का केंद्र बना रहा। ❑

आरण्यक में बैठे ऋषि ध्यान कर रहे थे। शिष्यों के मन में जिज्ञासा हुई कि ध्यान की महत्ता ज्यादा है अथवा तीर्थाटन की। ऋषि ने शिष्यों की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—

नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः।
नास्ति ध्यानरूपो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत्॥

अर्थात ध्यान के समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यान के समान कोई तप नहीं है और ध्यान के समान कोई यज्ञ नहीं है। इसलिए ध्यान का आचरण किसी स्थिति में नहीं छोड़ना चाहिए।

महामानवों के जागरण का समय

वर्तमान समय एक अभूतपूर्व चुनौती को लेकर मानवता के सम्मुख उपस्थित हुआ है। यह चुनौती वर्तमान वातावरण में व्याप्त अंधकार पर प्रतिबंध लगाने की माँग को लेकर के उपस्थित हुई है।

इतिहास गवाह है कि जब-जब वातावरण में व्याप्त अंधकार का प्रभाव तेजी से बढ़ता है तो एक ओर तो वह कुहासा हमें अपने आतंक से आतंकित करता है तो वहीं जो जाग्रत आत्माएँ हैं-यह समय उनसे उनके जागरण की प्रार्थना भी करता है। ध्यान से सुनें तो वर्तमान परिस्थितियों की एक ही पुकार है और वो यह कि ये परिस्थितियाँ जाग्रत आत्माओं से प्रकाश के अवतरण की गुहार करती हुई आई हैं।

ऐसा इसलिए क्योंकि आज जिन राहों से, जिन वीथियों से और जिन मार्गों से होकर मानवता का यह काफिला गुजर रहा है—ये मार्ग बाहर से उत्थान और प्रगति का दिखते हुए, वस्तुस्थिति में पतन और पराभव के हैं।

बाहर से दिखावा, बाहर से शोभा, बाहर से शृंगार भले ही उन्नति का हो, श्रेष्ठता का हो, पर भीतर से तो सब कुछ खोखला ही प्रतीत होता है। आज की उन्नति की कहानी के पीछे के यथार्थ से तो हर कोई वैसे ही परिचित ही है।

उस यथार्थ को अनुभव करने के लिए हमें बाहरी ज्ञान की नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभूति की आवश्यकता है। क्या हम यह नहीं जानते कि यह बाहर के वैभव का आडंबर असलियत में भीतर के पराभव का प्रमाण है? क्या हम नहीं जानते कि बाहर की दुनिया में जिस तेजी के साथ वैभव और कामनाओं का जाल पसरा है—उतनी ही तेजी के साथ मानवीय चिंतनशैली में स्वार्थ, छोटापन, क्षुद्रता और संकीर्णता बढ़े हैं? क्या हम यह नहीं जानते कि लोगों के बटुए जितनी तेजी के साथ भारी हुए हैं, उतनी ही तेजी के साथ उनके दिलों की दरियादिली विदा हो गई है?

यह सत्य है कि धन बढ़ा है, साधन बढ़े हैं, पर क्या यह सत्य नहीं कि उन्हीं के साथ-साथ लोगों की विलासिता भी बढ़ी है। परस्पर के स्नेह और आपस के विश्वास का स्थान शक, संदेह और कठोरता ने ले लिया है।

चरित्र और ईमानदारी, आस्था और सद्भाव इतनी तेजी के साथ इनसान के व्यक्तित्व से विदा हो रहे हैं कि किसी को, किसी पर भरोसा नहीं रह गया है और यदि कोई गलती से भरोसा कर भी ले तो थोड़े ही दिनों में धोखा खा जाता है। पुलिस-प्रशासन की उपस्थिति के बावजूद अपराधों की संख्या में कोई विशेष गिरावट आती दिखाई नहीं पड़ती।

समस्या स्पष्ट है कि आज न तो व्यक्ति के मन में समाज का संकोच है, न प्रशासन का भय और न ही ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था और प्रकृति के कर्मफल विधान पर उसे जरा-सा भी भरोसा रह गया है।

जैसी घटनाएँ आज के समय में घटती हैं, जैसी खबरें अखबारों में पढ़ने को मिलती हैं और जैसी बातें लोगों से सुनने को मिलती हैं, उनसे तो एक ही अर्थ निकलता है कि आज न केवल इनसान-इनसानियत के सिद्धांतों को भुला के बैठा है, बल्कि नकार के भी बैठा है।

यदि कोई पूछे कि इसका परिणाम क्या आया है ? तो परिणाम यह आया है कि जीवन जटिल हो गया है, उसका स्वरूप इतना संघर्षमय हो गया है कि हर व्यक्ति अपनी-अपनी समस्याओं में उलझा हुआ नजर आता है।

जो नहीं घटा—उसके घटने के डर को लेकर इनसान बैठा है। उसके मन में तमाम शंकाएँ हैं, कुशंकाएँ हैं, परेशानियाँ हैं, उलझनें हैं। सोचने वाली बात है कि इतने सारे झगड़ों-झंझटों के बीच में कोई सुख-शांति कैसे प्राप्त कर सकता है ? इतने दबाव को झेल पाना लोगों के लिए संभव नहीं हो पाता, इसलिए आत्महत्याओं की, अवसादग्रस्त लोगों की संख्या नित्यप्रति बढ़ती ही चली जाती है।

आज की परिस्थितियाँ हमें ये बताती हैं कि चलने का युग चला गया और अब हम दौड़ने के युग में जी रहे हैं। दौड़ने वाले इस युग में पतन और निराशा भी हमारी ओर उतनी ही तेजी से बढ़े चले आ रहे हैं—जितनी तेजी से प्रगति और विकास की आँधी चल रही है।

स्पष्ट है कि यदि समय रहते इन परिस्थितियों का प्रतिरोध न किया गया तो यह मानवता का काफिला इतने गहरे गड्ढे में जाकर के गिरेगा कि फिर उसका उठ पाना संभव न हो सकेगा। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों का प्रतिरोध मात्र जाग्रत आत्माओं के, महामानवों के प्रयत्न-पुरुषार्थ से ही संभव है। अच्छी आत्माओं के जागे बिना यह महती पुरुषार्थ कर पाना संभव नहीं।

आज का वातावरण महामानवों के लिए त्राहि-त्राहि करता नजर आता है। धरती से लेकर आसमान तक पुकार उन्हीं के जागरण के लिए सुनाई पड़ती है। महाकाल की आवाज सुनाई पड़ती है तो वे भी कहते हैं कि महामानवों की भूमि रहा यह देश-क्या आज सो गया है ? गिद्धों की, सियारों की टोलियाँ दिखाई पड़ती हैं तो सिंहों की गुफाएँ खाली क्यों हैं ? अनीति, अत्याचार और अनाचार संगठित दिखाई पड़ते हैं तो महामानवों की कतारें खाली क्यों हैं ?

यह समय आत्मबलसंपन्न भगीरथों के जागरण का समय है, जिनके तप का प्रकाश स्वर्ग से गंगा को भूमंडल पर अवतरण के लिए विवश कर दे और आज के समय का संताप एक नहीं, सहस्त्रों गंगाओं के अवतरण की माँग करता है और इसलिए एक भगीरथ का जागरण आज पर्याप्त न होगा—यह समय अब तपस्वियों की कतारों को बिछा देने का है।

वैसे भी सफलता के अधिकारी तो वे ही बन पाते हैं, जो सही समय पर सही निर्णय ले पाते हैं। समय निकलने के बाद जो पुरुषार्थ दिखाते हैं तो वे हँसी के पात्र बन जाते हैं।

आज के देवासुर संग्राम की ये परिस्थितियाँ हमसे व्यक्तिगत स्वार्थों और महाकाल के आवाहन में से किसी एक का वरण करने की माँग करती हैं। ईश्वरीय पुकार बार-बार यही दोहराती है कि दिखने में कष्टसाध्य होते हुए भी धर्म का साथ चुनने वाले कभी घाटे में नहीं रहे। आदर्शों के प्रति निष्ठा, ईश्वर के प्रति आस्था और गुरुदेव के आदेश के प्रति समर्पण—महामानव होने की परिभाषा बस, इतनी-सी ही है।

इतिहास गवाह है कि धर्म के पथ पर चलने वाले ही देवत्व की ध्वजा को फहराने के सौभाग्य का वरण कर पाते हैं। सांसारिक स्वार्थ का जो पथ है—वो शुरू में तो लाभ दिलाता है, पर बाद में विनाश की ऐसी व्यवस्था बनाता है कि जिससे उबर पाना संभव ही नहीं हो पाता।

संसार की दौड़ में तात्कालिक फायदे का लालच तो है, पर क्या यह सच नहीं कि बहेलिए

के जाल में पक्षी भी तात्कालिक लाभ की आशा में ही आ फँसते हैं। सांसारिक लालच की लुभावनी दौड़ का अंत दु:ख, कष्ट, पीड़ा के अलावा भला और किस तरह से होता है ?

इसीलिए भारतीय अध्यात्मवेत्ताओं का पथ आंतरिक उत्कृष्टता की प्राप्ति का पथ रहा, जिसे पूज्य गुरुदेव ने भी युग निर्माण योजना का आधार बनाया। उन्होंने कहा भी कि कोई कितनी भी भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त कर ले, जब तक आत्मिक उत्कृष्टता न बढ़े, तब तक न मनुष्य सुखी रह सकता है और न ही संतुष्ट। मनुष्य का वास्तविक पराक्रम—सद्गुणों के अभिवर्द्धन का पराक्रम है, व्यक्तित्व के नवनिर्माण का पराक्रम है।

कहने का अर्थ सरल है, स्पष्ट है कि जिन्हें पेड़ की तरह ऊपर उठने की अभीप्सा हो, उनमें बीज की तरह गलने का साहस भी होना चाहिए। जिनमें स्वयं पर हथौड़े चलवाने का साहस होता है, वो पत्थर की प्रतिमा के रूप में तराशे जाते हैं—पूजे जाते हैं। जिनमें धाराओं को चीरने की ताकत होती है, तैराक वो ही बन पाते हैं। यह समय ऐसे ही पुरुषार्थसंपन्न व्यक्तियों के जागरण का है। यह वर्ष यही पुकारता हमारे द्वार पर आ खड़ा हुआ है। ❑

सौराष्ट्र के राजकवि हेमचंद्र सूरि का प्रजा अत्यधिक सम्मान करती थी। स्वयं नरेश भी उनकी इच्छापूर्ति करने में अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करते थे। ऐश्वर्य से घिरे रहने पर भी वे उससे अछूते थे। एक बार वे एक गाँव में प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लेने हेतु निकले। गाँववासियों को जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि कविराज आ रहे हैं, वे सभी कुछ-न-कुछ लेकर कविराज के दर्शन हेतु उमड़ पड़े। इसी क्रम में एक ग्रामीण, जो स्वयं फटेहाल वस्त्रों में था, ने एक हस्तनिर्मित परिधान राजकवि के चरणों में समर्पित किया। एक नजर उस टाट जैसे मोटे कपड़े पर तो दूसरी तरफ अपने वस्त्राभूषणों पर नजर डालते हुए राजकवि की आँखें भर आईं। राजकवि ने मन-ही-मन सोचा—"कितना घोर वैषम्य! कहाँ हम कीमती व बहुमूल्य परिधानों से सुसज्जित हैं और कहाँ यह परिश्रमी किसान तन ढकने के वस्त्रों से वंचित है। सत्य तो यह है कि हमारा अस्तित्व इसकी श्रमशीलता के कारण ही है, किंतु हम इसे ही सुरक्षित जीवन प्रदान करने में असमर्थ हैं।"

ऐसा विचार करते हुए राजकवि ने वह परिधान माथे से लगाया और धारण कर लिया। अगले दिन राजकवि के वस्त्रों पर दृष्टि जाते ही महाराज बोले—"कविवर! ऐसे दरिद्र वस्त्र आपको शोभा नहीं देते। आपने ऐसे वस्त्र क्यों पहने हैं ?" कविराज बोले—"महाराज! हमारे राज्य की अधिकांश प्रजा ऐसे ही साधारण वस्त्र पहनती है तो फिर मुझे बहुमूल्य वस्त्र पहनने का अधिकार किसने दिया ? मैंने निश्चय किया है कि अब ऐसे ही वस्त्र पहनूँगा।" कविराज की करुणापूर्ण बातें महाराज के अंतर्मन को छू गईं और उन्होंने प्रण लिया कि जब तक राज्य के हर व्यक्ति को आवश्यक जीवनस्तर उपलब्ध नहीं करा देंगे, तब तक वे भी ऐसे ही वस्त्र धारण करेंगे।

तरुण संकल्प

विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले।
ताकि जग फिर 'जगद्गुरु' के सुगढ़-साँचे में ढले॥

श्रेष्ठ चिंतन में सँजोकर, आचरण की सभ्यता।
छलछला अंत:करण में भव्य भावों की सुधा॥
दूर हो अज्ञान का तम, ज्ञान का दीपक जले।
विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले॥

साधना व शील, संयम, त्याग, तप का व्रत लिए।
प्राणदीपों को पिलाने, स्नेह, समता घृत लिए॥
विश्व को संदेश 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का फिर मिले।
विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले॥

देव दुर्लभ देह है यह नहीं भोगों के लिए।
साधनों का धाम है यह दिव्य-योगों के लिए॥
अवतरण देवत्व का हो, दिव्यता इसमें पले।
विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले॥

'देव संस्कृति विश्वविद्यालय' इसी हित चल रहा।
नए युग की भारवाहक तरुण पीढ़ी ढल रहा॥
जाग जाए तरुण पीढ़ी, विश्व की विपदा टले।
विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले॥

शांतिकुंज 'युगतीर्थ' है, तप-त्याग है ऋषियुग्म का।
'ज्ञान की गंगोत्री' करती शमन छल-छद्म का॥
आइएगा! शांति पाने, शांतिकुंज-छाया तले।
विश्व भर में जागरण देवत्व का करने चले॥

—मंगल विजय

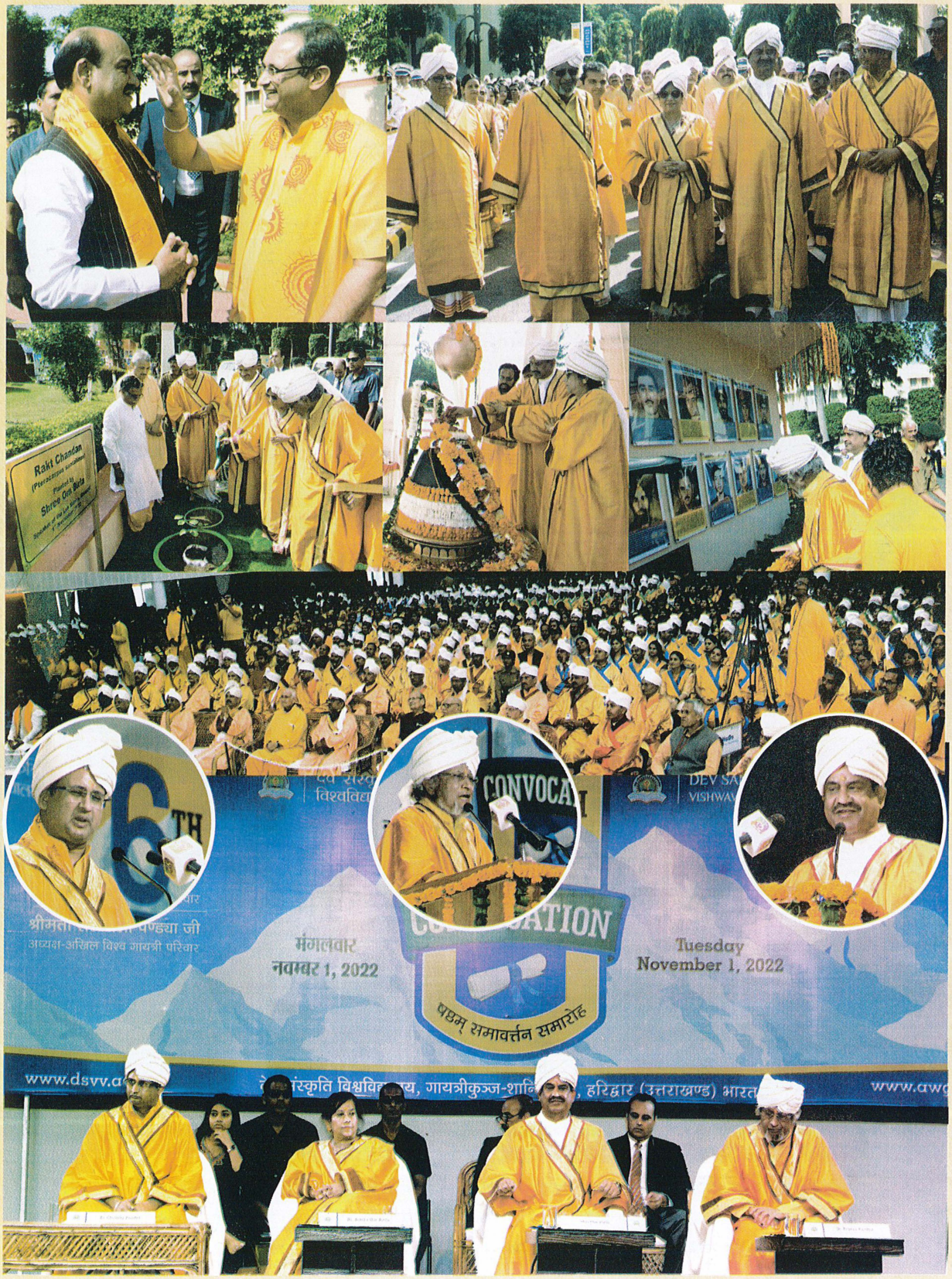

लोकसभाध्यक्ष माननीय श्री ओम बिरला जी की गरिमामयी उपस्थिति में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का 6वाँ दीक्षांत समारोह संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-12-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

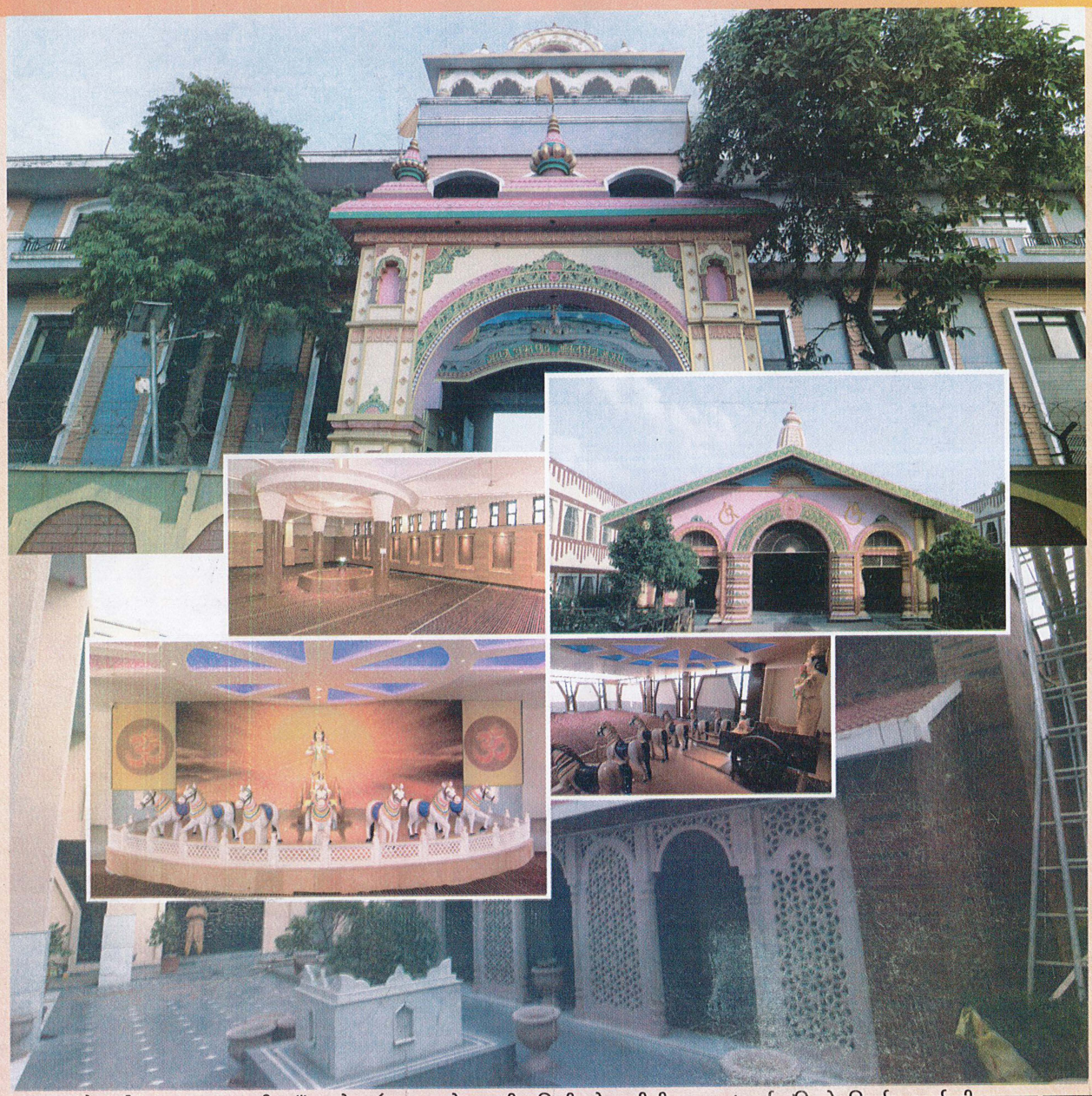

पूज्य गुरुदेव की पावन जन्मस्थली, आँवलखेड़ा (आगरा) में गायत्री शक्तिपीठ के नवीनीकरण एवं सूर्य मंदिर के निर्माण कार्य की अद्यतन झलक

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org